डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद

(गुजरात सरकार द्वारा स्थापित)

बी. ए. (ऑनर्स)

संतकवि कबीर

(HNDIKS-101)

विषय सूची

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृ. सं.
1	कबीर का जीवन और उनका साहित्य	1-11
2	कबीर के दोहे : वाचन और व्याख्या	12-21
3	कबीर की भाषा	22-34
4	कबीर : दर्शन और रहस्य भावना	35-51
5	कबीर की सामाजिक विचारधारा	52-62
6	कबीर : सामाजिक विद्रोह	63-75
7	हिन्दी आलोचना में कबीर	76-88

आभार ज्ञापन

इस स्वाध्याय सामग्री को तैयार करने में इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की स्वाध्याय सामग्री से एक इकाई ली गयी है. अन्य छह इकाइयाँ प्रो. चौथीराम यादव द्वारा संपादित ई-पुस्तक 'मध्यकालीन काव्य (भक्तिकालीन काव्य)' से 9-14 अध्यायों से साभार गृहित की गयीं हैं. मूल अध्यायों के लेखकों – डॉ. रीता दुबे, डॉ. रामबक्ष जाट, डॉ. अनिल शर्मा, डॉ. अमिष वर्मा और डॉ. अनिरुद्ध कुमार के प्रति हार्दिक आभार ज्ञापित किया जाता है.

इकाई 1 कबीर का जीवन और उनका साहित्य

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 कबीर का जीवन

1.3 कबीर का साहित्य

1.4 सारांश

1.5 अभ्यास प्रश्न

1.0 उद्देश्य

'कबीर का विशेष अध्ययन' पाठ्यक्रम के खंड-1 (कबीर का जीवन और युग) की यह पहली इकाई है। इसे पढ़कर आपः

- कबीर के निजी जीवन के विषय में विशिष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- कबीर साहित्य का परिचय प्राप्त कर सकेंगे; और
- उनके जीवन और रचनाओं का विवेचन विश्लेषण कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

मध्ययुगीन हिंदी भक्त कवियों में पहले महत्वपूर्ण भक्त कवि कबीर माने जाते हैं। हम यहाँ उनके जीवन और साहित्य से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर विचार करेंगे। कबीर-साहित्य के विद्यार्थी के सामने पहला सवाल यह उठ खड़ा होता है कि कबीर का प्रामाणिक जीवनवृत्त क्या है? उनके साहित्य और उनके जीवन का अंतःसम्बंध क्या है? इसका कारण यह है कि कबीर का जीवन वृत्तांत किंवदंतियों, अलौकिक घटनाओं और चमत्कारों से घिरा हुआ है। दूसरा प्रश्न कबीर के साहित्यिक कर्म को लेकर खड़ा होता है। कबीर के नाम से अनेक रचनाएँ मिलती हैं जिनके बारे में कबीर की मूल रचना होने का दावा किया जाता है, पर यह स्वीकृत तथ्य है कि कबीर साखी और पद कहते या गाते थे, उन्हें स्वयं लिखते और संग्रहीत नहीं करते थे। ऐसी हालत में प्रश्न उठता है कि मध्ययुगीन कबीर की वाणी और आधुनिक पाठालोचन अनुसंधान की प्रक्रिया के बीच कैसे वैज्ञानिक संगति बैठायी जाए? प्रक्षिप्त अंशों से कबीर की मूल रचना को अलग करना, कबीर की मूलभाषा की खोज करना भी कम कठिन नहीं है। कबीर के अध्येता के ज्ञान को सर्वांगीण बनाने के लिए उनको कबीर के जीवन और साहित्य से परिचित होना ही पड़ेगा। इस इकाई में इन्हीं समस्याओं पर विचार किया गया है।

1.2 कबीर का जीवन

कबीर के जीवनवृत्त के बारे में प्रामाणिक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इसका मूल कारण यह भी है कि कबीर ने स्वयं अपने जीवन के संदर्भ में यत्र-तत्र जो सूचना दी है, वह अपर्याप्त है। जो भक्त कवि उनके समकालीन और थोड़े ही परवर्ती माने जाते हैं,

उनकी कबीर के बारे में उक्तियाँ प्रशंसात्मक टिप्पणियाँ मात्र हैं। कबीर पंथ के श्रद्धालुओं और भक्तों ने उनके बारे में जो कहा है वह किंवदंतियों, अलौकिक घटनाओं और चमत्कारों से भरपूर है। ऐसी स्थिति में विद्यार्थी के सामने पहला सवाल कबीर के प्रामाणिक जीवनवृत्त का उठता है। ऐसा लगता है कि कबीर ने सामान्य परिवार में साधारण जीवन बिताकर अपने जीते जी असाधारण ख्याति प्राप्त कर ली थी। उनके जीवनवृत्त को खोजने और सँजोने की कोशिश उनकी मृत्यु के काफी बाद की गई है। इनमें पंथ और पंथेतर दोनों तरह के कबीर-श्रद्धालु शामिल हैं। ऐसी हालत में उनके जीवन के बारे में निश्चित रूप से कहने के बजाय सम्भावित रूप में ही कुछ कहा जा सकता है।

1. प्रशस्तियाँ

संत रैदास, पीपा, धन्ना, सेन आदि कबीर के समसामयिक माने जाते हैं। ये सभी कबीर की प्रसिद्धि से न केवल परिचित हैं, बल्कि उनकी भक्ति से प्रभावित भी हैं। कबीर के बारे में इनकी इक्का-दुक्का प्रशस्तिपरक उक्तियाँ जरूर मिलती हैं। जैसे –

नामदेव कबीरु त्रिलोचनु सधना सैनु तरै।
कहि रविदास सुनहुँ रे संतहु हरि जीउ ते सभै सरै।

(गुरु ग्रंथ साहब से रैदास की उक्ति)

जाके ईद बकरीद नित गऊ बध करै, मानियै सेख सहीद पीरा।
बाप वैसी करी पूत ऐसी धरी, नांव नव खंड परिसिध कबीरा।

(रज्जबदास की 'सर्वंगी' से पीपा की उक्ति, उद्धृत – डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल)

दादू दयाल कबीर के थोड़े ही परवर्ती हैं और उनका समय भी निश्चित है – सन 1544-1603 । उन्होंने कबीर को अनेक स्थानों पर बड़ी श्रद्धा से याद किया है –

हरि रस लागे नाम दे, पीपा अरु रैदास।
पीवत कबीरा नाथ क्या, अजहूँ प्रेम पियास।

'कासी तजि मगहर गया, कबीर भरोसे राम', 'दादू रहणि कबीर की, कठिन विषम यहु चाल', 'साचा सबद कबीर का मीठा लागे मोहि' आदि उक्तियाँ दादू पर कबीर के जीवन और साधना सम्बंधी प्रभाव को सूचित करती हैं। इनके अलावा रज्जब, सुंदरदास, मलूकदास, धर्मदास, हरिदास निरंजनी, बिहारवाले दरिया साहब, गरीबदास आदि परवर्ती संतों ने कबीर को बड़े आदर के साथ याद किया है और अपना आदर्श भी माना है।

सगुण भक्ति परम्परा से सम्बद्ध नाभादास ने कबीर को बड़े आदर से याद किया है। 'भक्तमाल' में अपने एक छप्पय में उन्होंने कबीर की साधना और कविकर्म के बारे में कहा है–

भक्ति विमुख जो धरम ताहि अधरम करि गायो।
जोग–जग्य व्रत–दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो।
हिंदू तुरक प्रमान रमैनी–सबदी साखी।
पच्छपात नहिं बचन 'सबहि' के हित की भाखी।
आरूढ़ दशा हवै जगत पर मुखदेखी नाहिंन भनी।
कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट दरसनी।

2. जन्मतिथि और जन्मस्थान

कबीर-पंथियों में कबीर की जन्मतिथि को लेकर यह दोहा सबसे अधिक प्रचलित है :

चौदह सौ पचपन साल गये, चंद्रवार एक ठाट ठए।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी प्रकट भए।

घन गरजै दामिनि दमकै, बूदें बरसें झर लाग गए।
लहर तालाब में कमल खिले, तहँ कबीर भानु परकास भए।

इस दोहे के अनुसार, कबीर का जन्म संवत 1455 (सन् 1398), जेठ पूर्णिमा सोमवार के दिन हुआ था। कबीर चरित्र बोध, कबीर कसौटी (बाबू लहनासिंह) में यह पद उद्धृत है। लेकिन किसने लिखा है, इसके बारे में इसका कोई उल्लेख नहीं है। बाबू श्यामसुंदर दास इसे धर्मदास की रचना मानते हैं, लेकिन प्रमाण उनके पास भी नहीं है। कबीर साहित्य के आधुनिक जानकारों के बीच इसमें प्रयुक्त 'चंद्रवार', 'बरसायत', 'प्रकट भये' को लेकर काफी विवाद है। बाबू श्यामसुंदर दास ने 'साल गये' का अर्थ 1455 के बाद अर्थात् 1456 मानते हुए जेठ पूर्णिमा के दिन 'सोमवार' (चंद्रवार) की बात स्वीकारी है, किंतु डॉ. माता प्रसाद का कहना है कि जेठ पूर्णिमा के दिन 'मंगलवार' पड़ता है। उन्होंने कहा कि 'यदि बरसायत का अर्थ बट सावित्री लिया जाए तो वह पूर्णिमा नहीं, अमावस्या को पड़ता है। इसलिए इसका अर्थ 'श्रेष्ठ मुहूर्त' लेना चाहिए।' डॉ. रामचंद्र तिवारी ने अंतिम दो पंक्तियों को कबीर के किसी श्रद्धालु द्वारा (उन्हें 'आलौकिक व्यक्तित्व' प्रदान करने के लिए) जोड़ी गईं बताई है। डॉ. पारसनाथ तिवारी 'चंद्रवार' को दिन के बदले स्थान वाचक मानते हैं। पं. परशुराम चतुर्वेदी और डॉ. केदारनाथ द्विवेदी 'तीस बरसु कछु न कियो' कबीर की उक्ति के आधार पर संवत 1425 (संवत 1455-30) निश्चित करते हैं। कुल मिलाकर कबीर की जन्मतिथि अनिश्चित है। बिना किसी प्रमाण के कबीर की सबसे ज्यादा स्वीकृत जन्मतिथि संवत 1455 ही है।

कबीर का जन्म किस स्थान पर हुआ था, इसे लेकर भी विद्वानों में काफी मतभेद है। कबीर के जन्मस्थान के रूप में 'काशी' और 'मगहर' विशेष रूप से मान्य हैं। कबीर पंथ में सबसे मान्य स्थान 'काशी' रहा है। इसके बारे में सबसे ज्यादा कबीर की एक साखी और एक पद का हवाला दिया जाता है जिसमें काशी का सीधे उल्लेख है –

काशी में हम प्रकट भए, रामानंद चेताए।
तू बाभन मैं काशी का जुलाहा, बूझहुँ मोर गियाना।

जनश्रुतियाँ भी काशी के पक्ष में हैं। अनंतदास, रेवरेंड अहमदशाह, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, श्यामसुंदर दास आदि काशी को ही कबीर का जन्म स्थान मानते हैं।

कई विद्वान ऐसे हैं जो काशी के बदले 'मगहर' को कबीर का जन्म स्थान मानते हैं। सबसे पहले डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने अपने शोध प्रबंध 'हिंदी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय' में 'मगहर' की ओर विद्वानों का ध्यान खींचा। उन्होंने 'श्री गुरु ग्रंथ साहब' के इस पद के आधार पर 'मगहर' का समर्थन किया –

तोरे भरोसे मगहर बसिओ, मेरे तन की तपन बुझाई।
पहिले दरसन मगहर पाइओ, फुनि कासी बसे आई।

3. परिवार : माता-पिता

यदि अंतःसाक्ष्य की दृष्टि से विचार करें तो कबीर ने कहीं भी अपने माता और पिता का नाम नहीं लिया है। उन्होंने अपने पदों और साखियों में राम को अपनी माँ (हरिजननी मैं बालिक तेरा), बाप (कहै कबीर बाप राम राया, हुरमति राखहु मेरी) पति, दोस्त, राजा आदि कहा है। लेकिन यह तो भक्तों का भगवान के प्रति सम्बंध प्रकट करने का एक प्रचलित मुहावरा है। कबीर ग्रंथावली (श्यामसुंदर दास) में एक पद ऐसा है जिसमें कबीर ने 'माई' का उल्लेख किया है :

मुसि मुसि रोवै कबीर की माई।
यह बारिक कैसे जीवहि खुदाई।

यह पद कबीर के पारिवारिक परिवेश की ओर संकेत करता है, लेकिन कबीर की माँ के नाम आदि के बारे में कुछ नहीं कहता।

जनश्रुतियाँ कबीर को एक अनाम विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न होने की बात कहती है, जिसे रामानंद ने पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया था। डॉ. रामचंद्र तिवारी इस जनश्रुति के मूल में कबीर को 'हिंदू कुल से जोड़ने' और 'रामानंद का अलौकिकत्व' सिद्ध करने की आकांक्षा मानते हैं। उनकी दृष्टि में इस प्रकार का प्रवाद कबीर के जन्म के काफी बाद का है। इसी से जुड़ी हुई एक दूसरी जनश्रुति भी है। वह यह है कि विधवा ब्राह्मणी लोकोपवाद के डर से बच्चे को लहरतारा तालाब के किनारे फेंक आई और वहाँ से गुजरने वाले नीरू-नीमा दम्पति ने उसे उठा लिया, पाला-पोसा और बड़ा किया। रज्जब की 'सर्वांगी' से पीपा की एक उक्ति, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, उद्धृत करते हुए डॉ. बड़थ्वाल ने कहा कि 'कबीर' नीरू-नीमा के सिर्फ पालित-पोषित पुत्र नहीं, बल्कि उन्हीं के असली पुत्र हैं। हालाँकि पंडित रामचंद्र शुक्ल, पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि उन्हें, जनश्रुति का अनुकरण करते हुए, नीरू-नीमा का पोष्य पुत्र ही मानते हैं।

4. नाम, कुल-जाति और पेशा

नाम का सम्बंध धर्म और संस्कृति से होता है। मध्यकाल में सामान्यतः हिंदू और मुसलमानों के नाम अपने-अपने धर्म और संस्कृति के अनुरूप रखे जाते थे और आज भी कमोवेश यही परम्परा है। 'कबीर' नाम मुस्लिम धर्म और संस्कृति से सम्बद्ध है। कबीर के नामकरण के बारे में भी एक जनश्रुति है। नीरू-नीमा लहरतारा के पास मिले बच्चे का नामकरण करने के लिए मौलवी के पास गए और उसने कुरान खोलकर उसका नाम 'कबीर' रख दिया। कबीर के नाम को लेकर विवाद नहीं है।

कबीर के कुल और जाति को लेकर विद्वान एक मत नहीं जान पड़ते हैं। डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल कबीर को जुलाहा कुलोत्पन्न मानते हैं, जबकि द्विवेदी जी उन्हें सिर्फ उसमें पालित-पोषित मानते हैं।

5. विवाह, पत्नी और संतान

कबीरपंथी कबीर को जीवनभर अविवाहित, लेकिन त्यागी गृहस्थ संत मानते हैं। जनश्रुतियाँ कबीर पंथियों के उलट कहती हैं। वे कबीर के विवाह का न केवल समर्थन करती हैं, बल्कि उनके बच्चे-बच्ची होने की बात भी करती हैं। जनश्रुति के अनुसार कबीर की पत्नी का नाम 'लोई' था , जो एक वैरागी की पालिता-पोषिता पुत्री थी। वह उन्हें गंगा स्नान के समय लोई में लपेटी हुई गंगा में बहती हुई मिली थी। वैरागी ने लोई में लपेटी होने के कारण उसका नाम 'लोई' रख दिया था। मरते समय बाबा के बताए उपाय से लोई को कबीर मिले । वह कबीर से प्रभावित हुई और उन्हीं के साथ रहने लगी। एक जनश्रुति लोई को कबीर की पत्नी बताती है, तो दूसरी उनकी शिष्या।

डॉ. मुंशीराम शर्मा और डॉ. रामकुमार वर्मा प्रचलित जनश्रुति में एक पक्ष और जोड़ते हुए कबीर की दो पत्नियाँ होने की बात कहते हैं। पहली-लोई, दूसरी-धनिया। जहाँ तक 'लोई' के कबीर की पत्नी होने का प्रश्न है; डॉ. पारसनाथ तिवारी, डॉ. माताप्रसाद गुप्त, आदि का कबीर के अंतर्साक्ष्य के आधार पर एक मत यह है कि यह स्त्री का नाम नहीं है, बल्कि लोगों के लिए सम्बोधनवाचक संज्ञा शब्द है।

जहाँ तक कबीर की दूसरी पत्नी का प्रश्न है, डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'गुरु ग्रंथ साहब' के दो पदों के आधार पर अपनी यह स्थापना दी है। पद इस प्रकार है –

मेरी बहुरीआ को **धनीआ** नाउ। ले राखियो रामजनिया नाउ।

दूसरे पद की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

पहिली करूपि कुजाति कुलखनी साहुरै पेई ए बुरी।
अब की सरूपि सुजानि सुलखनी सहजे उदरि धरी।
भली सरी मेरी पहिली बरी। जुगु जीवउ मेरी अबकी धरी।

यह कबीर का आत्मकथ्य है–

सहजै सहजै सब गये, सुत बित कांमणि काम।
एकमेक ह्वै मिलि रह्या दास कबीरा राम।

यह कबीर का आत्मकथ्य है। पर इसे यथार्थ माना जाय या मात्र भक्ति का मुहावरा। इसे यदि यथार्थ रूप में ग्रहण किया जाय तो कबीर की पत्नी और पुत्र का समर्थन होता है। जनश्रुति तो कबीर के एक पुत्र 'कमाल' और एक पुत्री 'कमाली' की बात कहती है। गुरु ग्रंथ साहब में 'कमाल' के विषय में एक 'सलोग' भी मिलता है :

बूड़ा बंस कबीर का उपजियो पुतु कमालु।
हरि का सिमुरनु छांड़ि कै घरि लै आया मालु।

6. शिक्षा-दीक्षा, और शिष्य परम्परा

कबीर के जीवन के ये संदर्भ भी स्पष्ट नहीं हैं। सामान्यतः मान्यता यह है कि कबीर अनपढ़ थे। वे बहुश्रुत थे और उन्होंने सत्संगति से ज्ञानार्जन किया।

शिक्षा और ज्ञानार्जन की दो परम्पराएँ रही हैं। एक-श्रुतिशिक्षाज्ञान की परम्परा और दूसरी पुस्तकीय शिक्षा-ज्ञान की परम्परा। कबीर के अंतर्साक्ष्य से स्पष्ट है कि वे पुस्तकीय शिक्षा और विद्या को व्यर्थ मानते थे। 'पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय', 'तू कहता कागद की लेखी हौं कहता आँखिन की देखी' उनके प्रसिद्ध कथन इसके प्रमाण हैं। कबीर पंथ में कबीर का महत्व पोथी ज्ञान और लेखन के कारण नहीं, बल्कि 'मुख' बचन या 'शब्द' साधना के कारण है। इसके प्रमाण में यह साखी बहु प्रचलित है —

मसि कागद छूओ नहीं, कलम गही नहिं हाथ।
चारों जुग को महातम, कबीर मुखहिं जनाई बात।

सुनने (श्रुत) की और मौखिक (मुख बचन परम्परा लिखने की परम्परा से बहुत पुरानी है। साधना के क्षेत्र में भी ये दोनों परम्पराएँ थीं। दीक्षा और मंत्र दोनों के यहाँ मौखिक ही हैं, लेकिन इसके बाद एक परम्परा शास्त्र से चिपक जाती है और दूसरी गुरुवचन को अपना प्रमाण मानती है। कबीर की शिक्षा-दीक्षा दूसरी परम्परा में हुई। वे शास्त्र को नहीं सद्गुरु के शब्द को ही सबसे बड़ा प्रमाण मानते थे। डॉ. माताप्रसाद गुप्त इसी पक्ष और परम्परा में कबीर को रखकर देखते हैं। डॉ. गुप्त का कहना है कि 'संत सम्प्रदायों में वाणी संग्रहों की एक परम्परा मिलती है। सम्प्रदाय भेद से इसमें कुछ अंतर आ जाता है, किंतु बहुत कुछ समानता होती है। इन संग्रहों में सम्प्रदाय के गुरुओं की वाणियों के अतिरिक्त उन संतों की वाणियाँ संकलित होती हैं जिनकी सम्प्रदाय में मान्यता होती है।' दादू सम्प्रदाय, सिख सम्प्रदाय में इस प्रकार के वाणी संकलन हैं। 'कबीर समय में भी इस प्रकार के संकलन ग्रंथ रहे होंगे और उनसे उन्होंने अपने से पूर्ववर्ती संतों और योगियों की वाणियों का अध्ययन और अभ्यास किया होगा। कबीर अपनी परम्परा के किसी भी संत से कम शिक्षित-दीक्षित थे, यह मानने का कोई कारण नहीं है।' सिख गुरुओं और संतों की वाणियों (मुख

बचन) को लिखित रूप देने की परम्परा कबीर के जीवन काल से परवर्ती है। यह एक प्रकार से पोथी परम्परा का अनुकरण है।

कबीर ने गुरु को ईश्वर के समान महत्व दिया है –

> **सतगुर सवां न को सगा,** सोधी सई न दाति।
> **हरिजी सवां न को हितू,** हरिजन सई न जाति।

इतना महिमाशाली कबीर का दीक्षागुरु कौन है, यह अब तक निश्चित नहीं हो पाया है। जनश्रुतियाँ और भक्तों की परम्परा (कबीरपंथ भी) रामानंद को कबीर का गुरु बताती हैं।

भक्तों की परम्परा भी जनश्रुति के समान रामानंद को कबीर का गुरु मानती आई है। इसमें कबीर पंथी और पंथेतर भक्त सामान्यतः एकमत हैं। रामानंद को सबसे पहले कबीर का गुरु कहने वाले भक्त हरिराम व्यास हैं, जो कबीर के थोड़े ही परवर्ती थे। इस बारे में उनका एक पद है। देखिए –

> साँचे साधु जु रामानंद।
> जिन हरिजी सों हित करि जान्यों और जानि दुःख दंद।
> जाको सेवक कबीर धीर अति सुमति सुरसुरानंद।
> तब रैदास उपासिक हरि कौ, सूर सु परमानंद।

नाभादास और अनन्त दास भी इसका समर्थन करते हैं। उधर कबीर पंथ में रामानंद और कबीर के बीच गुरु-शिष्य सम्बंध को लेकर अनेक उक्तियाँ प्रचलित हैं –

> – काशी में हम प्रकट भये, रामानंद चेताये।
> – भक्ति द्राविड़े ऊपजी, लाये रामानंद।
> प्रकट करी कबीर ने सप्तदीप नव खंड।
> – सद्‌गुरु के परताप से मिटि गयौ सब दुख-दंद।
> कह कबीर दुबिधा मिटि, गुरु मिलिया रामानंद।

आधुनिक हिंदी विद्वानों का भी एक बहुत बड़ा वर्ग है जो जनश्रुतियों और भक्तों की परम्परा का आँख मूँदकर समर्थन करता है। डॉ. श्यामसुंदर दास, डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पं. रामचंद्र शुक्ल, पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी से लेकर डॉ. शुकदेव सिंह तक रामानंद को ही कबीर का गुरु मानने के पक्ष में हैं। डॉ. शुकदेव सिंह तो कबीर बीजक से एक अंतःसाक्ष्य भी प्रस्तुत करते हैं। वह इस प्रकार है –

> आपन आस किये बहुतेरा। काहु न मर्म पावल हरि केरा ।
> इंद्री कहाँ करै विस्राम । सो कहँ गये जे कहते राम।
> सो कहँ गये जो होत सयाना। होय मृतक वह पदहिं समाना।
> रामानंद रामरस माते। कहै कबीर हम कहि कहि थाके।

कबीर गुरु को सबसे ज्यादा महत्व देते हैं। हो सकता है कोई उनका दीक्षा गुरु भी रहा हो, पर कबीर ने अपनी रचनाओं में किसी गुरु का नाम लिया नहीं है। अंतःसाक्ष्य में वे अपने आतमज्ञान या आतमराम को गुरु कहते हैं। एक परम्परा बुद्ध, महावीर आदि की आत्मदीपोभव की है, कबीर इसी परम्परा में जान पड़ते हैं।

कबीर ने किसी को अपना शिष्य बनाया था या नहीं, अंतःसाक्ष्य से इसकी कोई सूचना नहीं मिलती। दादूपंथी राघवदास ने अपने 'भक्तमाल' में कबीर ने नव शिष्यों - कमाल, कमाली, पद्‌मनाभ, रामकृपाल, नीर, धीर, ज्ञानी, धर्मदास और हरदास - का उल्लेख किया है। कबीर पंथ में वीरसिंह, बिजली, सुरतगोपाल, धर्मदास, तत्त्वा, जीवा, जागूदास, भागूदास, मलूकदास, गरीबदास आदि कबीर के मुख्य शिष्य माने जाते हैं।

7. मृत्यु, मृत्युस्थान और उससे सम्बद्ध घटनाएँ

कबीर की जन्मतिथि के समान उनकी मृत्यु तिथि भी विवाद के घेरे में है। कबीर पंथ में प्रचलित और विद्वानों द्वारा स्वीकृत तिथि संवत् 1575 है और उसका आधार यह दोहा है–

संवत् पंद्रह सौ पछत्तरा किया मगहर को गौन।
माघसुदी एकादसी रलो पवन में पवन।

इसके अलावा कबीर की मृत्युतिथि के रूप में 'पंद्रह सौ उनहत्तरा', 'पंद्रह सौ उनचास' और 'पंद्रह सौ पाँच' भी प्रचलित है। अंतःसाक्ष्य की दृष्टि से कबीर ने अपने पूर्ववर्ती भक्त नामदेव का नाम बड़े आदर से लिया है और उनका समय 13वीं-14वीं शताब्दी है। दूसरी बात कबीर के यहाँ 'मुगल' शब्द नहीं मिलता। मुगल बादशाह बाबर के भारत आक्रमण की तिथि निश्चित है। अतः कबीर का जीवन काल चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के बाद और सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के पहले दोनों के बीच ही बीता होगा। उनके मृत्युस्थान के रूप में 'मगहर' सबसे अधिक स्वीकृत है।

1.3 कबीर का साहित्य

कबीर के प्रामाणिक साहित्य की खोज, उनकी संख्या का निर्धारण, उनके पाठों का चयन और शुद्धता निर्धारण आसान काम नहीं हैं। कबीर पंथ में यह मान्यता प्रचलित है कि सद्‌गुरु कबीर साहेब की वाणी की कोई सीमा नहीं है –

जेते पत्र बनसपती, औ गंगा कै नैन।
पंडित विचारा क्या कहै, कबीर मुख बैन।

कबीरदास का यह अंतःसाक्ष्य 'मसि कागद छुयो नहीं' इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने जो कुछ कहा था, वह मौखिक ही था। इस बात से सभी विद्वान सहमत हैं कि कबीर-वाणी को लिखित रूप उनके पंथ और पंथेतर श्रद्धालुओं ने दिया होगा। किंतु उसमें कितना कबीर का अपना है और कितना श्रद्धालुओं का अपनी ओर से कबीर नाम से जोड़ा हुआ, दोनों को अलगाना बेहद मुश्किल काम है।

(क) कबीर-साहित्य की संख्या : कबीर साहित्य के सिलसिले में पहली समस्या यह उठती है कि उनके मूल साहित्य की संख्या कितनी है? कबीर साहित्य के खोजी विद्वानों ने पहले-पहल उनके साहित्य की संख्या निर्धारण का यत्न किया। कबीर साहित्य की व्यवस्थित खोजबीन और संख्या निर्धारण का पहला प्रयास जी.एच. वेस्टकाट ने अपनी पुस्तक 'कबीर और कबीर पंथ' (सन 1907) में किया। उन्होंने कबीर के 82 ग्रंथों की सूची दी। इसके बाद मिश्रबंधुओं ने 'हिंदी नवरत्न'(सन 1910) में 75 'मिश्रबंधु विनोद' (सन 1929) के तीसरे संस्करण में 84, डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'संत कबीर' (सन 1943) में 86 ग्रंथों की सूची दी है। नागरी प्रचारिणी सभा के 1943 से 1955 के खोज विवरणों में यह संख्या 130 से 158 तक पहुँच गई। इनके बारे में विद्वानों की राय यह है कि एक ही रचना के कई संस्करणों के नाम गिना दिए गए हैं। कई रचनाएँ तो जाली और परवर्ती हैं, जैसे अनुराग सागर और कबीर मंसूर आदि। इनमें जिन विचारों का प्रतिपादन है, वे कबीर के क्रांतिकारी बाह्याडम्बर विरोधी विचारों से मेल नहीं खातीं। गोष्ठी से सम्बंधित सभी रचनाएँ कबीर पंथियों की साम्प्रदायिक श्रेष्ठताबोध की उपज हैं और ये सभी कबीर के बहुत बाद की हैं। डॉ. रामचंद्र तिवारी की इनके बारे में टिप्पणी गौरतलब है – 'निश्चित है कि यह

सारा कृतित्त्व कबीर का नहीं है। यह कबीर और कबीर पंथी संतों की रचनाओं की मिली जुली संख्या है।' और इनकी प्रामाणिकता भी संदेहास्पद है।

(ख) कबीर-वाणी के प्रामाणिक पाठ के प्रयत्न : कबीर-वाणी के प्रामाणिक पाठ की प्रस्तुति का पहला प्रयास नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी की ओर से हुआ। इस कार्य की जिम्मेदारी पहले-पहल अयोध्या सिंह उपाध्याय ने सम्भाली। तब से लेकर अब तक इस दिशा में प्रयत्न निरंतर जारी हैं। कबीर-वाणी के प्रामाणिक और अंतिम पाठ का निश्चय तो अभी तक नहीं हो सका है, लेकिन कुछ विद्वानों की रचनाएँ विचार के योग्य अवश्य हैं।

कबीर वचनावली (सन 1916) - सं. अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध : अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध ने सन 1916 में 'कबीर वचनावली' का सम्पादन किया। हरिऔध ने बीजक, चौरासी अंग की साखी, कबीर शब्दावली, आदि ग्रंथों के आधार पर यह ग्रंथ तैयार किया है। इसमें 781 साखियाँ, 228 पद शामिल किए गए हैं; रमैनियाँ छोड़ दी गई हैं। डॉ. रामचंद्र तिवारी का इसके बारे में कहना है कि 'कबीर वचनावली को पूर्णतः प्रामाणिक नहीं माना जा सकता, क्योंकि उसके सम्पादन में न तो आधार प्रतियों के पाठ की तुलना की गयी है, न भाषा, व्याकरण, अर्थ एवं देशकाल की दृष्टि से उसकी प्रामाणिकता की जाँच की गयी, न लिपि भ्रम पुनरुक्ति आदि दोषों से उत्पन्न विकृतियों पर विचार।'

कबीर ग्रंथावली (सन 1928) सं. श्यामसुंदर दास : सभा की ओर से कबीर के प्रामाणिक पाठ की प्रस्तुति का दूसरा प्रयास बाबू श्यामसुंदर दास ने किया और सन 1928 में कबीर ग्रंथावली का सम्पादन किया। उन्होंने दो प्राचीन हस्तप्रतिलिपियों, पहली, - सं. 1561, दूसरी -सं. 1881, के आधार पर सम्पादन का कार्य सम्पन्न किया। दोनों में पाठ भेद कम है, लेकिन दूसरी में पहली से दोहों और पदों की संख्या कुछ अधिक है। इसमें कुल 809 साखियों, 400 पदों और 7 रमैनियों को शामिल किया गया है। इसकी प्रामाणिकता के बारे में विद्वानों के संदेह का कारण आधारभूत प्रति की 'पुष्पिका' है। उसकी लिखावट शेष ग्रंथ की लिखावट से मोटी है और बड़ी भी। सम्भव है लिपिकार अपनी लिपि प्राचीन बनाने के लोभ में ऐसा कर बैठा हो। दोनों प्रतिलिपियों पर राजस्थानी का असर स्पष्ट दिखाई देता है। यह कबीर का पूर्ण प्रामाणिक पाठ तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन कबीर के प्रामाणिक पाठ की खोज की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयत्न अवश्य कहा जा सकता है। इसकी भूमिका और परिशिष्ट भी महत्वपूर्ण हैं। 'परिशिष्ट' में श्यामसुंदर दास ने आदि ग्रंथ में संकलित कबीर की साखियों, पदों और रमैनियों को शामिल कर इसका महत्व बढ़ा दिया है। बीजक की पाठ परम्परा इसमें छोड़ दी गई है।

संत कबीर (सन 1943) - डॉ. रामकुमार वर्मा : डॉ. वर्मा ने सन 1943 में 'गुरुग्रंथ साहिब' में संकलित कबीर की वाणी पर 'संत कबीर' नाम से एक स्वतंत्र पुस्तक सम्पादित की। उन्होंने कबीर वाणी पर अपनी पुस्तक से पूर्व प्रकाशित छह ग्रंथों -संत बानी संग्रह (सन 1905) -बेलबेडियर प्रेस इलाहाबाद; बीजक श्री कबीर साहब (सन 1905) -साधु पूरनदास; सत्य कबीर की साखी (सन 1920)-बेंकटेश्वर प्रेस बम्बई; कबीर ग्रंथावली (सन 1928) - श्यामसुंदर दास; बीजक मूल (सन 1932)-कबीर चौरा बनारस; सतगुरु कबीर साहिब की साखी (सन 1935)-सया जी बाग बड़ौदा - की प्रामाणिकता को संदेहास्पद मानते हुए 'गुरुग्रंथ साहिब' के पाठ को सर्वाधिक प्रामाणिक और विश्वसनीय माना। सिखों के पाँचवें गुरु अर्जुनदेव द्वारा सन 1604 में संकलित और उनका सबसे पूज्य ग्रंथ होने के कारण वे इसका पाठ अविकृत मानते हैं। कबीर की भाषा का मूल रूप पूर्वी मानते हुए उन्होंने कबीर वाणी के ग्रंथ साहिब वाले पाठ पर यत्र-तत्र पंजाबी भाषा का प्रभाव स्वीकारा है। इसमें 243 सलोग (साखियाँ) 228 सबद (पद) संकलित हैं। डॉ. रामचंद्र तिवारी का इस संकलन के विषय में कहना है कि 'अत्यंत सतर्कता और सावधानी' के बाद कुछ सलोक नामदेव और रविदास के आ गए हैं। दूसरी बात कबीर और अर्जुन देव के संकलन

के समय के बीच जो फासला है उसमें प्रक्षेप की सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता है। ऐतिहासिक महत्व रखते हुए भी 'संत कबीर' कबीर का पूर्ण प्रामाणिक और निर्दोष पाठ नहीं है।

कबीर बानी (सन 1965) – सं. अली सरदार जाफ़री : पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी 'कबीर' पुस्तक (सन 1942) के परिशिष्ट-2 में 'कबीर-वाणी' का संकलन किया था। इसमें आरम्भ के 100 पद, क्षिति मोहन सेन के संग्रह से (रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा अंग्रेजी में अनूदित) लिए गए हैं। शेष 156 वे हैं जिनके आधार पर उन्होंने कबीर के सिद्धांतों का प्रतिपादन और समर्थन किया था। अली सरदार जाफ़री ने, यद्यपि आचार्य द्विवेदी का नाम नहीं लिया है, उनकी कबीर वाणी से 128 छंदों का संकलन सन् 1965 में तैयार किया और हिंदुस्तानी बुक ट्रस्ट, बम्बई से छपवाया। इसे तैयार करने के पीछे उनकी मंशा थी 'कबीर की मुकम्मल तस्वीर' पेश करना। इसके लिए हिंदी परम्परा के साथ इस्लामी सूफ़ी परम्परा में कबीर को देखने की जरूरत थी। हिंदू-मुस्लिम एकता, राष्ट्रीय भावात्मक एकता की दृष्टि से इस संस्करण का महत्व असंदिग्ध है, लेकिन कबीर-वाणी के पाठ की प्रामाणिकता के मद्देनज़र जाफ़री का प्रयास नदारद है। मौखिक परम्परा से सम्बद्ध होने के कारण नए पदों का जुड़ना और भाषा में कुछ बदलाव आना लाजिमी है। डॉ. शुकदेव सिंह का कहना बिल्कुल संगत है कि 'कबीर के नाम पर मिलने वाली रचनाओं में एक भी ऐसी नहीं है जिसे शत-प्रतिशत कबीरकृत कहा जा सके। चूँकि मौखिक, श्रवण तथा संकलन की परम्परा कबीर के जीवन काल में ही प्रचलित हो गयी थी, अतः उनकी सारी कृतियों में प्रक्षेप और पाठांतर स्वाभाविक हैं।' इस संकलन की भूमिका और पाद टिप्पणियाँ कबीर के इस्लामी संदर्भ को समझने में बड़ी कारगर हैं।

कबीर ग्रंथावली (सन 1961) – सं. डॉ. पारसनाथ तिवारी : भारतीय हिंदी परिषद, इलाहाबाद विश्वविद्यालय की ओर से सन 1961 में डॉ. पारसनाथ तिवारी ने नए सिरे से 'कबीर ग्रंथावली' को सम्पादित करते हुए प्रकाशन करवाया। उनके शोध निर्देशक डॉ. माता प्रसाद गुप्त का इस विषय में कहना है कि 'कबीर की रचनाओं के अनेक पाठ मिलते हैं और इनमें एक दूसरे से भिन्नता भी बहुत है। इन सभी पाठों को इकट्ठा करके उनके समालोचनात्मक अध्ययन और उपयोग का एकमात्र प्रयास प्रयाग विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के प्राध्यापक डॉ. पारसनाथ तिवारी ने किया है।' डॉ. तिवारी ने निर्गुणिया संतों की 9 शाखाओं की 17 प्रतियाँ- दादू पंथी शाखा की 5, निरंजनीशाखा की 1, आदि ग्रंथ की एक, बीजक की दो, शब्दावली की दो, साखियों की तीन, सर्वांगी की एक, गुणगणनामा की एक, आ. क्षिति मोहन सेन की एक-का विशद और गंभीर तुलनात्मक विश्लेषण करते हुए कबीर-वाणी का सबसे प्राचीन और प्रामाणिक शुद्ध पाठ निश्चित करने की कोशिश की है। कबीर के नाम से मिलने वाली 'साढ़े चार हजार साखियों', 'लगभग सोलह सौ पदों,'एक सौ चौतीस रमैनियों' के गहन तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि 'दो सौ पद (या सबद), बीस रमैनियाँ, एक चौतीसा रमैनी तथा सात सौ चौवालीस साखियाँ प्रामाणिक रूप से कबीर की सिद्ध होती हैं।' पच्चीस समुच्चयों को संकीर्ण सम्बंध समुच्चय मानकर उन्होंने छोड़ दिया। लेकिन इन्हें वे पूरी तरह से अप्रामाणिक नहीं मानते थे। उन्होंने बहुत स्पष्ट कहा कि 'इसका यह तात्पर्य नहीं कि इन संकीर्ण-सम्बंध वाले प्रतिसमूहों में पृथक रूप से पाए जाने वाले सभी पद प्रक्षिप्त हैं। सम्भव है कि कुछ न कुछ प्रतिशत इनमें भी प्रामाणिक छंदों का हो, किंतु उस विशाल मिश्रित राशि में से उस छोटे प्रतिशत को अलग करने का कोई साधन हमारे पास नहीं है।' अतः कबीर-वाणी की पूर्ण प्रामाणिकता के प्रति अपने अथक परिश्रम के बावजूद डॉ. तिवारी भी आश्वस्त नहीं थे।

कबीर ग्रंथावली (सन 1969)-सं. डॉ. माता प्रसाद गुप्त : डॉ. पारसनाथ तिवारी के समुच्चयों पर पुनर्विचार करते हुए डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने 'कबीर ग्रंथावली' का अपना पाठ तैयार किया।

कबीर बीजक (सन 1972) - सं. डॉ. शुकदेव सिंह : विद्वानों का एक वर्ग (वेस्टकाट, हरिऔध, डॉ. बड़थ्वाल, पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि) कबीर-वाणी का सबसे पुराना प्रामाणिक रूप बीजक को मानता रहा है। उससे प्रेरित होकर कबीर की मूल भाषा 'पूर्वी' मानकर आधुनिक वैज्ञानिक पाठानुसंधान की प्रक्रिया अपनाते हुए डॉ. शुकदेव सिंह ने बीजक के विभिन्न संस्करणों के चार समुच्चयों - दानापुर, फतुहा, भगताही-अ, भगताही-ब का गहन तुलनात्मक विश्लेषण और छानबीन की और वे निष्कर्ष पर पहुँचे कि चारों समुच्चयों के रूपांतरों में भगताही -अ समुच्चय प्राचीनतर और सुरक्षित रूपांतर जान पड़ता है। ..... भगताही- अ समुच्चय में प्रक्षेपण की क्रिया कम हुई है। जो भी हो, उक्त चारों समुच्चयों में बीजक का सर्वाधिक सुरक्षित रूप भगताही - अ में मिलता है।' उन्होंने बीजक में 84 रमैनियों, 115 सबदों, 353 साखियों, 12 कहरों, 12 बसंतों, 2 बेलियों, 1 विरटुली, 2 चाँचरियों, 3 हिंडोलों, एक चौंतीसा, 1 विप्रमतीसी को प्रामाणिक मानते हुए शामिल किया। डॉ. पारसनाथ तिवारी की ग्रंथावली को राजस्थानी परम्परा का पाठ मानते हुए उन्होंने उनके सम्पादन को पूर्णतः सार्थक नहीं माना। आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से बीजक का प्रथम व्यवस्थित सम्पादन होने के कारण डॉ. शुकदेव के बीजक का महत्व निर्विवाद है, लेकिन जहाँ तक उसके पूर्ण प्रामाणिकता का प्रश्न है, रमैनी, सबद, साखी के अलावा सारे काव्य रूप, कहरा से लेकर विप्रमतीसी तक, बिहारी भाषा के विशेष प्रयोग के कारण परवर्ती जान पड़ते हैं, संदिग्ध हैं।

कबीर वाङ्मय (खंड-1 रमैनी-1974, खंड-2 सबद-1981, खंड-3 साखी-1976)- सं.डॉ. जयदेव सिंह, वासुदेव सिंहः कबीर वाङ्मय को तीन खंडों-रमैनी, सबद, साखी में सम्पादित और प्रकाशित डॉ. जयदेव सिंह और डॉ. वासुदेव ने किया। उन्होंने अपने सम्पादकीय प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए कहा कि 'उनकी (कबीर की) वाणी पर मुख्यतः दो क्षेत्रों में काम हुआ है-एक साहित्यिक विद्वानों द्वारा, दूसरा कबीर पंथियों द्वारा। शुकदेव सिंह द्वारा पाठ निर्धारण और प्रामाणिकता सम्बंधी किए गए कार्य अधिक वैज्ञानिक और सुसंगत हैं। किंतु इनमें ऐसा कोई ग्रंथ नहीं है जो कि कबीर के समग्र साहित्य को एक साथ उपलब्ध कराता हो। यदि 'ग्रंथावली' नाम से प्रकाशित ग्रंथों में साखियों और पदों का महत्व दिया गया है तो 'बीजक' में रमैनियों की प्राचीनता और प्रामाणिकता सिद्ध की गई है। साहित्यिक विद्वानों द्वारा 'कबीर ग्रंथावली को अपनाए जाने का परिणाम यह हुआ कि हिंदी के छात्रों का अध्ययन साखियों और पदों तक ही सीमित रह गया है। वे प्रायः रमैनी से अपरिचित ही रहे हैं, जबकि कबीर के विद्यार्थी के लिए रमैनी की जानकारी आवश्यक है। अतएव एक ऐसे ग्रंथ की नितांत आवश्यकता थी जिसमें कबीर का सम्पूर्ण साहित्य विस्तृत व्याख्या सहित उपलब्ध हो। प्रस्तुत ग्रंथ इसी दिशा में किए गए प्रयत्न का परिणाम है।' दरअसल डॉ. जयदेव सिंह ने कबीर ग्रंथावली और बीजक के बीच का रास्ता निकाला और पहले खंड में उन्होंने 84 रमैनियों दूसरे खंड में 350 सबदों, परिशिष्ट-1 में कबीर बीजक के अन्य काव्य रूपों; तीसरे खंड में 809 साखियों को रखा। ग्रंथावलियों और बीजक के बाद का सम्पादन होने के कारण उनमें जो भाषा सम्बंधी अशुद्धियाँ रह गई थीं उन्हें ठीक करते हुए अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक पाठ देने का प्रयास किया। भाषा शुद्धि और पाठ निर्धारण कबीर की भाषा को 'पूर्वी' मानकर किया गया है। इसकी विशेष उपयोगिता 'भावार्थ बोधिनी व्याख्या' के कारण है। यद्यपि कबीर के प्रामाणिक पाठ का प्रतिनिधित्व वाङ्मय भी नहीं करता। कबीर वाङ्मय के सभी खंड विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी से छपे हैं।

1.4 सारांश

कबीर का पूरा जीवन मध्ययुगीन भारतीय समाज व्यवस्था की अमानवीय विसंगति और विडम्बना का एक जीता-जागता दस्तावेज है। कारण कि वह इतनी जनश्रुतियों, अलौकिक

घटनाओं और चमत्कारों से घिर गया है कि उनके आधार पर कबीर के वास्तविक जीवन का, उनके जन्म-मृत्यु की प्रामाणिक तिथियों का पता लगाना अत्यंत कठिन है। कबीर का जमाना राजशाही का था और वे पैदा चाहे जिसके यहाँ हुए हों, लेकिन पालित-पोषित हुए थे एक गरीब जुलाहे परिवार में। उनका पेशा भी कपड़ा बुनकर-बेचकर जीवनयापन करने वाले जुलाहे का था। उस जमाने में जन्मपत्रियाँ राजाओं-बादशाहों और ऊँची जाति के समृद्ध लोगों की बनाई जाती थीं। इतिहास और वंशावलियाँ भी इन्हीं लोगों की लिखी जाती थी। समाज व्यवस्था के सबसे निचले स्तर के साधारण आदमी की जन्मपत्री या इतिहास की बात तो सोची ही नहीं जा सकती थी; पर इन्हीं के बीच कभी-कभार ऐसे लोग भी होते रहे हैं, जो अपने पुरुषार्थ से, असाधारण कर्म और लोक कल्याण से अपने जीवन में किंवदंती पुरुष बन जाते थे। कबीर ऐसे ही लोगों में से एक थे, जो नगण्य परिवेश के भीतर पालित-पोषित होकर अपने कर्म से लोक गण्य या लोक मान्य -'भया कबीर कबीर' - हो गए थे। कबीर की इस असाधारण ख्याति के बाद पंथ और पंथेतर लोगों को उन्हें पुराण-इतिहास पुरुष (भक्त) बनाने की चिंता हुई। कबीर की जन्म-मृत्यु की तिथियाँ और उनके जीवन से जुड़ी तमाम घटनाओं की खोज परवर्ती हैं। अंतःसाक्ष्य के रूप में भी कबीर के सम्बंध में खास सूचना नहीं मिलती। इसलिए उनके जीवन वृत्त के बारे में अंतःबहिर्साक्ष्यों का मिलान करके सम्भावित रूप में यही कहा जा सकता है कि उनका जीवन चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के बीच बीता था।

जो स्थिति कबीर के जीवन की है, वही उनके साहित्य की है। उन्होंने लोगों के सामने वाणी कही थी, लेकिन स्वयं उनका लेखन और सम्पादन नहीं किया था। कबीर-वाणी का संग्रह और सम्पादन बाद के लोगों ने किया और वे अलग-अलग भाषा क्षेत्रों के थे। इसी कारण कबीर-वाणी के मोटे रूप से तीन पाठ मिलते हैं – राजस्थानी पाठ, पंजाबी पाठ, पूर्वी पाठ, जिनके आधार पर आधुनिक विद्वानों ने कबीर-वाणी के प्रामाणिक पाठ को प्रस्तुत करने की कोशिश की। इनमें से कोई भी पाठ कबीर की मूलभाषा का प्रतिनिधित्व नहीं करता। केवल इतना कहा जा सकता है कि मध्यकाल में काशी-मगहर के बीच बोलचाल की भाषा कबीर-वाणी का आधार नहीं होगी। योगियों और सूफ़ियों से निकट सम्पर्क के कारण उनकी भाषा का खड़ापन उसमें अवश्य रहा होगा। पाठ संग्रह परवर्ती होने के कारण उनमें प्रक्षेप और भाषाविकृति की सम्भावना भी कम नहीं है।

1.5 अभ्यास प्रश्न

1. कबीर के जीवन का संक्षेप में परिचय दीजिए।
2. कबीर के साहित्य पर विचार कीजिए।
3. कबीर के साहित्य की प्रामाणिकता की समस्या की संक्षिप्त चर्चा कीजिए।
4. कबीर के जीवन और साहित्य से सम्बंधित पाँच ग्रंथों के नाम बताते हुए संक्षेप में उनका परिचय दीजिए।

इकाई 2 कबीर के दोहे : वाचन और व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 कबीर की चुनी हुई साखियों का पाठ-विश्लेषण

2.4 कबीर के चुने हुए पदों का पाठ-विश्लेषण

2.5 सारबिंदु

2.6 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

2.7 उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप–

- कबीर की साखियों और पदों का विश्लेषण कर सकेंगे.
- कबीर के बारे में किए गए आलोचनात्मक चिन्तन किस प्रकार उनके पाठ से जुड़े हुए हैं.
- किसी भी पाठ या रचना का विश्लेषण किस तरह किया जाए, इसे समझ पाएँगे.

2.2 प्रस्तावना

कबीर की साखियाँ दोहा छन्द में लिखी हुई हैं. 'साखी' का तात्पर्य है – साक्ष्य या गवाह. अर्थात जो तथ्य जीवन का सत्य है और उसे और लोगों ने भी देखा, सुना या कहा है. जीवन का सत्य किसी एक व्यक्ति तक ही सीमित नहीं होता. इसे अन्य लोग भी जानते हैं इसीलिए कबीर ये नहीं कहते कि जो सत्य है उसे केवल मैं ही जानता हूँ. और कोई नहीं जानता. कबीर की साखियों में सिर्फ उनकी आत्माभिव्यक्ति नहीं है. कबीर अपनी साखियों में कहते हैं कि ये बातें जो मैं कह रहा हूँ वो जिन्दगी की सच्चाई हैं, जो सभी समझदार लोगों को दिखाई देती हैं. यह जीवन का भी सत्य है और कबीर द्वारा अनुभूत सत्य भी. कबीर अपने पाठकों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि जिस सत्य को मैंने चिन्तन, मनन और विचार द्वारा पाया है, उसी सत्य को मैं 'साखी' के रूप में आपको कह रहा हूँ. कबीर की साखियाँ या रचनाएँ मात्र आत्माभिव्यक्ति नहीं हैं बल्कि ये दूसरों को सिखाने हेतु सम्बोधित हैं. कबीर का अपनी रचनाओं में मूल स्वर यह है कि मैंने जो जिया है , भोगा है , समझा है; उसे मुझे आपको भी समझाना है. इसलिए आपके अनुभव

को ध्यान में रखते हुए मैं ये बातें आपसे कह रहा हूँ. अतः कबीर की साखियों में आत्माभिव्यक्ति नहीं बल्कि साक्ष्य और उपदेशात्मकता है.

इस उपदेशात्मकता के बावजूद कबीर की यह विशेषता है कि ये शुष्क उपदेश नहीं हैं. इसके द्वारा वे पाठक से जीवन के अनुभव को साझा करते हैं. इस कारण कबीर की रचनाओं में एक संवादधर्मिता है. इस संवादधर्मिता के पीछे कबीर का उद्देश्य अपने जैसे व्यक्तियों को विकसित करना है. वे जिस मनुष्य से प्रेम करते हैं उसे विवेकी बनाना चाहते हैं, इसके लिए कई बार कबीर उस मनुष्य को डाँटते-फटकारते भी नज़र आते हैं. इस कारण कई बार ऐसा भ्रम होता है कि कबीर अपने पाठकों का आदर नहीं कर रहे हैं. परन्तु यह सिर्फ भ्रम है. कबीर को अपने पाठकों, श्रोताओं और भक्तों से बहुत प्रेम है, वे चाहते हैं कि जिस जीवन सत्य को उन्होंने देखा है उसे उनके पाठक भी देखें.

2.3 कबीर की चुनी हुई साखियों का पाठ-विश्लेषण

लम्बा मारग दूरी घर विकट पन्थ बहु भार।
कहौ सन्तों क्यूँ पाईये, दुर्लभ हरि दीदार॥

यह साखी 'सुमिरण कौ अंग' से ली गई है. यहाँ कबीर कह रहे हैं कि मार्ग बहुत ही लम्बा है और घर बहुत दूर है. साथ ही रास्ता भी बहुत ही मुश्किलों से भरा है. इतनी विरोधी परिस्थितियों में हे सन्तों ईश्वर का दर्शन दुर्लभ है. अर्थात ईश्वर का दर्शन कैसे प्राप्त होगा? यह हरेक व्यक्ति के लिए सरल नहीं है. यह इस साखी का सरलार्थ है. इस साखी में दूसरा तथ्य है कि यह सन्तों को सम्बोधित है. सन्त वो हैं जो कबीर के समानधर्मा हैं. यहाँ कबीर सन्तों से अपने अनुभव को साझा कर रहे हैं. ईश्वर से न मिलने की जो पीड़ा कबीर के मन में है , वही पीड़ा सन्तों के मन में भी है. हर मध्यकालीन भक्त-कवियों की सबसे बड़ी पीड़ा है – ईश्वर से मिलन की कठिनाई क्योंकि उनका मूल उद्देश्य और लक्ष्य है – ईश्वर से मिलन, जीवन से मुक्ति. इसमें बहुत बाधाएँ हैं. मुख्य बाधा है यह जगत. ईश्वर मिलन का रास्ता बहुत लम्बा है. सम्पूर्ण जीवन साधना के मार्ग पर चलने के बाद अन्तिम समय में ही ईश्वर से मिलन सम्भव है. यह साधना बहुत कठिन है क्योंकि जीवन भर किए गए कर्मों का भार मनुष्य के साथ होता है. पाप-पुण्य का बोझ अन्त समय तक मनुष्य के साथ बना रहता है. अनेक तरह के सांसारिक आकर्षणों के कारण जीवन रूपी मार्ग काफी ख़राब है इसलिए ईश्वर की प्राप्ति सरल नहीं है. कबीर अपने पाठकों और श्रोताओं को यही कहना चाह रहे हैं. वे ईश्वर मिलन की इस कठिनाई को बार-बार इसलिए रेखांकित कर रहे हैं क्योंकि ईश्वर से मिलना सहज

नहीं, वह मनुष्य वृत्तियों के विपरीत है. मनुष्य की वृत्तियाँ तो लोभ-लालच, मोह-माया आदि के अन्दर भटकती रहती है. हर मनुष्य के भीतर ये भटकाव सहज रूप में होते हैं. इसलिए ईश्वर से मिलने का प्रयास उल्टी दिशा में चलने के समान है. कबीर इसी कारण मार्ग की बाधाओं का वर्णन करते हैं. रास्ते के खराब होने का तात्पर्य है कि जीवन में बहुत से लोग ईश्वर के मार्ग पर चलने से रोकने या भटकाने वाले आएँगे. साथ ही कई तरह की बाधाएँ भी हैं, जैसे– मन की बाधा, शरीर की बाधा, मायामोह की बाधा आदि. दर्शन के स्तर पर कबीर ने इन सब का विस्तृत वर्णन किया है. वे कहते हैं कि गर्दन कटाकर ही ईश्वर से मिला जा सकता है. ईश्वर मिलन की इन कठिनाइयों का वर्णन कबीर ने इसलिए किया है ताकि उनके पाठक या श्रोता मानसिक रूप से इन कठिनाइयों का सामना करने को तैयार रहें. जितने भी मध्यकालीन कवि हैं, सभी का एकमात्र उद्देश्य ईश्वर की प्राप्ति है. किसी ने भी ईश्वर से मिलने की अनुभूति का विस्तृत वर्णन नहीं किया है लेकिन ईश्वर से मिलन में आने वाली परेशानियों का वर्णन सभी ने किया है. वे इन परेशानियों को कैसे हटाया जाए इसका जिक्र करते हैं.

कबीर की काव्य-भाषा बोलचाल की लोकभाषा है. इस लोकभाषा के बीच में 'दीदार' जैसा फारसी शब्द दर्शन के लिए प्रयुक्त हुआ है. वास्तव में कबीर हमेशा इस बात का ध्यान रखते हैं कि अर्थ बारीकी से पाठक तक सम्प्रेषित हो.

हिरदा भीतरि दौ बलै धूंवाँ प्रगट न होइ।
जाके लागी सो लखे के जिहि लाई सोइ॥

यह साखी 'ज्ञान बिरह कौ अंग' से ली गई है. हृदय के भीतर दीपक जल रहा है और उसके जलने से धुँआ प्रकट नहीं होता. यह किसी को पता नहीं चलता, जिसे लगी है या जिसने लगाई है सिर्फ वही जानता है. यह विशेष प्रकार के अनुभव को प्रकट करने वाली साखी है. इसमें कहा जा रहा है कि ईश्वर-भक्ति की जो लाग है, स्नेह है, बेचैनी है या आग है ; उसका अनुभव कोई बाहरी व्यक्ति नहीं कर सकता. साधारणतः जहाँ-जहाँ आग होती है, वहाँ धुँआ भी होता है जिसे दूर से भी देखकर आग की उपस्थिति ज्ञात हो जाती है. लेकिन यह ऐसी आग है जिसमें धुँआ ही नहीं है. जिस व्यक्ति को यह आग लगती है वह अन्दर ही अन्दर इसकी पीड़ा महसूस करता है. यह पीड़ा या तो आग लगाने वाले को पता होती है या जिसे यह आग लगी है

उसे पता होता है. किसी अन्य को इसका पता नहीं चलता है. कहने का तात्पर्य यह है कि जो सन्त है या भक्त है, वह इस अनुभव को अकेले जीता है. यह अकथनीय प्रेम है. यहाँ कबीर अनुभव पर बल देते हैं.

बैद मुवा रोगी मुवा मुवा सकल संसार।
एक कबीरा ना मुवा जिनि के राम अधार॥

यह साखी 'जीवन मृतक कौ अंग' से ली गई है. वैद्य मर गया और जो रोगी था वो भी मर गया. केवल ये दोनों ही नहीं मरे बल्कि सारा संसार भी मर गया. यहाँ कबीर यह स्थापित करना चाहते हैं कि मृत्यु एक अटल सत्य है. उन्होंने कहा कि रोगी मर गया और उसका इलाज करने वाला जो वैद्य था वो भी मर गया, मतलब वैद्य में भी इस बीमारी यानी मृत्यु को ठीक करने का सामर्थ्य नहीं है. साथ ही सारा संसार भी मर गया क्योंकि एक दिन सभी व्यक्तियों को मरना ही है. सिर्फ एक कबीर ही नहीं मरा, जो राम के आधार यानी आश्रय पर जीवित है. यहाँ कबीर भक्त और आत्मा के अर्थ में प्रयुक्त है. यहाँ ऊपरी तौर पर कबीर का बड़बोलापन दिखता है लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है. यहाँ कबीर व्यक्ति कबीर नहीं है. वह परमात्मा का प्रतिनिधि है. आत्मा का सात्विक रूप है और आत्मा कभी मरती नहीं. आत्मा में कोई कलुष नहीं होता. वास्तव में बीमारी यह है कि ईश्वर से मिलन कैसे हो और यह बताने वाला कोई नहीं है.

माया मुई न मन मुवा मरि मरि गया सरीर।
आसा त्रिस्नाँ ना मुई यों कहि गया कबीर॥

यह साखी 'सुमिरण कौ अंग' से ली गई है. माया की धारणा भक्तिकाल में सन्त कवियों के यहाँ खूब आई है. वे माया को 'महाठगिनी' कहते हैं. माया के अनेक रूप हैं. वह अजर-अमर है. माया की तरह मन भी नहीं मरता लेकिन यह शरीर हर बार मरता है. मृत्यु हमेशा शरीर की होती है. भाव, आकांक्षा, विचार आदि की मृत्यु नहीं होती है. अर्थात माया कभी मरती नहीं बल्कि एक रूप से दूसरे रूप में रूपान्तरित होते रहती है. कबीर कहते हैं कि मनुष्य में मन में हमेशा आशा और तृष्णा होती है. चाह का भाव ही तृष्णा है. कुछ मिलने की आशा मनुष्य को दौड़ाते रहती है. मनोवैज्ञानिक रूप से देखा जाए तो मनुष्य के मन की आशा उसमे जीवन का संचार करती है. आदमी इससे कर्मठ बना रहता है. जब वह निराश हो जाता है तो वह मानसिक रोगी हो जाता है. सामान्य बोलचाल में यह कहा जाता है कि मनुष्य को आशावादी होना चाहिए. कबीर इसके समर्थक नहीं हैं. वे कहते हैं कि मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य ईश्वर से मिलना है. जब तक

ईश्वर से मिलन न हो तब तक मुक्ति नहीं है. ईश्वर से मिलने में ये आशा और तृष्णा बाधक हैं. शरीर के मरने पर भी यह तृष्णा नहीं मरती. आशा और तृष्णा सर्वव्यापी हैं. यह किसी एक व्यक्ति के ही भीतर नहीं बल्कि मानव-मात्र के भीतर पाई जाती है. तृष्णा हर किसी में है. कबीर यह प्रश्न खड़ा करते हैं कि सब मरते हैं तो यह आशा, तृष्णा और माया क्यों नहीं मरती? मन क्यों नहीं मरता? कबीर अपने समय के मनोभावों को अलग तरह से देखते हैं. वे आशा, तृष्णा, माया, मन आदि को एक पात्र के रूप में स्थापित करते हैं. कबीर इस संसार को सत्य नहीं मानते हैं. वे कहते हैं कि सब झूठ है. सत्य केवल ईश्वर है. सत्कर्म सिर्फ एक ही है और वो है ईश्वर से मिलना. बाकी जितने सांसारिक प्रपंच हैं, उन सबका कबीर खण्डन करते हैं. आत्मा और परमात्मा के बीच आशा, तृष्णा जैसी भाव दशाएँ मनुष्य को बहुत भटकाती हैं. कबीर के पाठ-विश्लेषण के दौरान उनके दार्शनिक पृष्ठभूमि को समझने की जरुरत बार-बार होती है. कबीर की मूल मान्यताएँ यही हैं इसीलिए इसका प्रतिफलन उनके सामाजिक सत्य में मिलता है; जहाँ वे आडम्बरों, पाखण्डों और अन्धविश्वासों का बार-बार खण्डन करते हैं. कबीर ने मनुष्य की भीतरी आकांक्षाओं को समझने की कोशिश की है.

कबीर इस संसार का झूठा माया मोह।
जिहि घरि जिता बधावणाँ तिहि घरि तिता अँदोह॥

यह साखी 'सुमिरण कौ अंग' से ली गई है. जन्म के समय जितनी खुशियाँ होती हैं, मृत्यु के समय उतना ही दुःख होता है. अतः यह सब माया-मोह है और जो असत्य है. सत्य सिर्फ मृत्यु है. जिसका जन्म होता है, उसकी मृत्यु भी अवश्य होती है. इसलिए जिस घर में जितने लोगों का जन्म होता है उतने लोगों का मरना भी तय है. अर्थात जन्म की खुशियों को अन्त में मृत्यु के दुःख में बदलना ही है. जन्म की खुशी क्षणिक है. यह अन्तिम सत्य नहीं है बल्कि बीच का सत्य है. सत्य वही होता है जो सबसे अन्त में आता है और अन्त में मृत्यु ही आती है. मृत्यु ही अन्तिम सत्य है. अतः जिसकी संसार में जितनी लिप्तता होती है, उसकी पीड़ा उतनी ही बढ़ती जाती है.

2.4 कबीर के चुने हुए पदों का पाठ-विश्लेषण

क्या मांगौ किछु थिर न रहाई। देखत नैन चला जग जाई॥
इक लख पूत सवा लख नाती। तिहि रावन घर दिआ न बाती॥

लंका सा कोट समुन्द सी खाई। तिहि रावन की खबरि न पाई॥
आवत संग न जात सँगाती। कहा भयौ दरि बाँधे हाथी॥
कहै कबीर अन्त की बारी। हाथ झारि जैसें चला जुआरी॥

इस पद में मृत्यु की शक्ति और सच्चाई को बताया गया है. क्या माँगू ? आखिर क्या माँगे इस संसार से, यहाँ कोई भी वस्तु स्थिर यानी स्थायी नहीं है. कोई भी चीज शाश्वत नहीं है. शाश्वत सिर्फ मृत्यु है. इस मृत्यु की पीड़ा को कबीर ने बार-बार बहुत ही सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है. आँखों के सामने देखते-देखते यह संसार समाप्त हो जाता है. संसार में जो आज है वह कुछ समय बाद अतीत हो जाता है. ऐसी स्थिति में स्थिरता की बात करना व्यर्थ है. संसार की नश्वरता को सिद्ध करने के लिए कबीर रावण जैसे शक्तिशाली मिथक का उदाहरण देते हैं. वे कहते हैं रावण के एक लाख बेटे थे और उन बच्चों के सवा लाख बच्चे और थे. उस रावण के घर में आज कोई दीया और बत्ती जलाने वाला भी नहीं बचा है. राम-रावण युद्ध में रावण के परिवार का समूल नाश हो जाता है. किंवदन्ती है कि रावण के घर में कोई रोने वाला भी नहीं बचा था. कबीर कहना चाह रहे हैं कि जब इतनी बड़ी ताकत वाले रावण का कोई नहीं बचा तो साधारण इन्सान की क्या बिसात? लंका एक सुरक्षित किला वाला नगर था. उसके चारों और रावण ने अद्‌भुत परकोटा बनवाया था. चारों तरफ समुद्र रूपी खाई थी. ऐसे अलंघ्य और सुरक्षित स्थान में रहने वाले रावण का आज कोई अता-पता नहीं. मृत्यु से वह भी नहीं बच सका. रावण के रूपक द्वारा कबीर अपने समय के राजा और जमीन्दारों के अहंकार का खण्डन कर रहे हैं. वे कह रहे हैं कि जब रावण मृत्यु से नहीं बच सका तो तुम्हारी क्या औकात है? तुम्हारे इस झूठे अहंकार की क्या जरुरत? जब आप जन्म लेते हैं उस समय भी अकेले आते हैं और मृत्यु के समय जाते हुए भी अकेले ही जाते हैं. भले ही आपने अपने दरवाजे पर हाथी ही बाँध रखा हो. अन्त में मृत्यु के समय हर कोई हारे हुए जुआरी की भाँति सभी चीजों को यहीं छोड़कर चले जाते हैं.

कबीर इस पद में जीवन के निष्कर्ष को रख रहे हैं. इस निष्कर्ष में मृत्यु की पीड़ा है, उस पीड़ा की अभिव्यक्ति कबीर का उद्देश्य नहीं है. वे इस निष्कर्ष पर मुस्कुराते हैं और कहते हैं कि जीवन की इस सच्चाई को समझने और स्वीकार करने की आवश्यकता है.

कारनि कौन सँवारै देहा । यहु तनि जरि बरि ह्वैहैं खेहा ॥
चोवा चन्दन चरचत अंगा। सो तन जरत काठ कै संगा॥
बहुत जतन करि देह मुटियाई। अगनि दहै कै जम्बुक खाई॥
जा सिरि रचि रचि बाँधत पागा। ता सिरि चंच सँवारत कागा॥
कहै कबीर तन झूठा भाई। केवल राँम लह्यौ ल्यौ लाई॥

सामान्य तौर पर मनुष्य जिन पर गर्व करता है, इस पद में कबीर उसे नश्वर कह रहे हैं. मनुष्य को अपनी शरीर की सुन्दरता और ताकत का अभिमान होता है. मनुष्य अपने शरीर को सुन्दर बनाने के लिए कई तरह के जतन करता है. कबीर इस प्रवृत्ति पर प्रहार करते हुए कहते हैं कि क्या है तुम्हारी ताकत? एक दिन तो तुम्हें मरना ही है. किस कारण से अपने शरीर को सँवारते हो ? कभी इस पर विचार किया है.

यह पद सीधे-सीधे उस सामान्य जनता को सम्बोधित है जो अपने शरीर को बहुत महत्त्व देती हैं. शरीर को महत्त्व देने के कारण व्यक्ति शरीर के सम्बन्धों को भी महत्त्व देता है. कबीर कहते हैं कि जब शरीर ही महत्त्वपूर्ण नहीं है तो शरीर के सम्बन्ध कैसे महत्त्वपूर्ण होंगे. जिस शरीर को हम चन्दन वगैरह की मालिश करके चमकाते हैं, वही तन अन्त में लकड़ी के साथ जलकर खाक हो जाता है. सारा सौन्दर्य वहाँ समाप्त हो जाता है. शरीर के अनुभव के साथ मनुष्य की भाव वृत्तियाँ जुड़ी होती हैं. इन भाव वृत्तियों का अन्त में कोई उपयोग नहीं होता है. बहुत ही मेहनत करके लोग अपने शरीर को मोटा करते हैं लेकिन मृत्यु के बाद या तो उसे आग में जला दिया जाता है या फिर सियार खाता है. जिस सिर पर बहुत प्यार से हम साफा बाँधते हैं, मृत्यु के उपरान्त उसी पर कौआ चोंच मारता है. कहने का तात्पर्य यह है कि इस शरीर और इसके सौन्दर्य को इतना महत्त्व क्यों देना, जब मृत्यु के बाद इसकी यही दुर्गति होनी है. कबीर इसीलिए कहते हैं कि यह शरीर असत्य है इसीलिए राम अर्थात ईश्वर के प्रति प्रेमभाव की लौ लगाए रखो. इसके अतिरिक्त मनुष्य जो भी प्रयत्न करता है, वह व्यर्थ है. कबीर जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण करते हैं. वे साधारण मानवीय जीवन का चित्रण जोरदार तरीके से करते हुए भी इसे वरेण्य या प्रशंसनीय नहीं मानते हैं.

माया महा ठगिनि हम जाँनीं।
तिरगुन फांसि लिए कर डोलै बोले मधुरी बाँनीं॥
केसव कै कँवला होइ बैठी सिव कै भवन भवाँनी।
पंडा कै मूरति होइ बैठी तीरथ हू मैं पाँनीं॥
जोगी कै जोगिनि होइ बैठी राजा कै घरि राँनीं।
काहू कै हीरा होइ बैठी काहू कै कौड़ी काँनीं॥
भगताँ कै भगतिनि होइ बैठी तुरकाँ कै तुरकाँनी।
दास कबीर साहेब का बंदा जाकै हाथि बिकाँनीं॥

इस पद में कबीर ने माया के स्वरूप को खींचते हुए उसकी निन्दा की है. माया की निन्दा उनका प्रिय विषय है. ईश्वर के बारे में कबीर काफी कम शब्दों में अपनी बात कहते हैं जबकि माया के लिए बहुत से रूपक खींचते हैं. यहाँ कबीर ने माया का मानवीकरण किया है. वे कहते हैं कि यह माया महाठगिनी है

अर्थात लोगों को ठगने वाली है. ठगी का अपना मनोविज्ञान होता है. ठग आपकी सहमति से आपको बुरे रास्ते पर ले जाता है. ठग जोर जबर्दस्ती नहीं करता है. इसी तरह माया भी मनुष्य के मन में इच्छा पैदा करती है इसलिए मनुष्य स्वयं अपनी इच्छा से पाप की ओर प्रवृत्त होता है. यह पद पुरुषों को सम्बोधित है इसलिए यहाँ माया को ठगिनी कहा गया है. कबीर के समय सामाजिक जीवन के क्षेत्र में सिर्फ पुरुषों का ही वर्चस्व था. यही कारण है कि कबीर यहाँ सिर्फ पुरुषों को ही सम्बोधित कर रहे हैं, माया को स्त्री का रूपक देकर. माया को स्त्री का रूप देने के कारण ही आज कई आलोचक उन्हें स्त्री विरोधी मानते हैं.

माया महाठगिनी है और ठगने वाले से आपको सिर्फ विवेक, बुद्धि और ज्ञान ही बचा सकते हैं. मन में विद्यमान लालच, स्वार्थ, इच्छा और आकांक्षा को ही ठग ठगी के लिए इस्तेमाल करता है. ठग भावनाओं और मनोभावनाओं को जानने में बड़ा समर्थ होता है. किवदंती के अनुसार हमारे मन के भीतर सत, रज और तम नामक तीन गुण या तीन तरह की भावनाएँ पाई जाती हैं या हमारी भावनाओं को इन तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है. माया सत, रज और तम इस त्रिगुणों की फाँस अपने हाथ में लिए रहती है और मनुष्य को इनके जाल में फाँसने के लिए मधुर बोली बोलती है. माया हमें फँसाने के लिए लुभाती है. इसके कई रूप होते हैं. कबीर ने माया के रूपों की विविधता बताने के लिए मिथकों का प्रयोग किया है. वे कहते हैं कि माया ईश्वर के घर में लक्ष्मी और शिव के घर में पार्वती के रूप में बैठी है. पंडा के यहाँ मूर्ति के रूप में हैं तो तीर्थों पर पानी के रूप में विद्यमान है. कबीर मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा आदि धार्मिक आडम्बरों के विरोधी थे. इसीलिए वे इसे भी माया का ही एक रूप मानते हैं. इसी तरह वे आगे कहते हैं कि माया जोगी के यहाँ जोगन के रूप में है. राजा के यहाँ रानी के रूप में तो किसी के यहाँ हीरा जैसी बहुमूल्य रत्न के रूप में है. किसी के यहाँ कोढ़ी और कानी के रूप में है यानी गरीबी के रूप में तो भगत के यहाँ भगतिन के रूप में है. कबीर के कहने का तात्पर्य यह है कि चाहे जो भी सांसारिक रिश्ते हों, अमीरी हो या गरीबी सब माया के ही रूप हैं जो हमें ईश्वर प्राप्ति के असली उद्देश्य से भटकाती है. लेकिन यह माया भी उसकी गुलाम हो जाती है जो ईश्वर का गुलाम है. यहाँ कबीर अपने को ईश्वर का गुलाम कहते हैं , जिसकी वजह से माया उनकी गुलाम है. कबीर के अनुसार माया से बचने का एकमात्र उपाय है – ईश्वर की भक्ति.

2.5 सारांश

उपर्युक्त साखियों और पदों के पाठ-विश्लेषण से कबीर का दार्शनिक मर्म हमारे समक्ष अनेक रूपों में प्रकट होता है. कबीर के दर्शन को समग्रता से समझने के लिए इन्हें एक साथ पढ़ना आवश्यक है. उनके हरेक पदों और साखियों में उनके दर्शन का मूल तत्त्व छिपा हुआ है. वास्तव में कबीर ईश्वर के अलावा किसी के भी

अस्तित्व को नहीं स्वीकार करते हैं. ईश्वर के अतिरिक्त उनके लिए सब मायामोह और मिथ्या है. इसी कारण कबीर के सामाजिक सत्य में वर्णाश्रम,जातिगत श्रेष्ठता, बाह्याचार, अन्धविश्वास, मूर्तिपूजा आदि का जबर्दस्त खण्डन मिलता है. इसकी वजह यह है कि कबीर इसे मिथ्या मानते हैं, इनके अस्तित्व से इंकार करते हैं क्योंकि इनका ईश्वर से कोई सम्बन्ध नहीं है.

2.6 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

निम्नलिखित प्रश्नों का विस्तृत उत्तर दीजिए :

1) कबीर ने अपनी साखियों में ईश्वर का वर्णन किस रूप में किया है?
2) कबीर द्वारा किये गये माया के स्वरूप को अपने शब्दों में वर्णित कीजिए.

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :

1) शरीर की नश्वरता पर कबीर के विचार.
2) ***"कबीरा इस संसार का झूठा माया मोह।"*** की व्याख्या.
3) कबीर के मत में अंतिम सत्य.
4) ***"हिरदा भीतरि दौ बलै धूंवाँ प्रगट न होइ।***
   जाके लागी सो लखे के जिहि लाई सोइ॥" दोहे की व्याख्या.

निम्नलिखित वाक्यों के सही या गलत होने का निर्णय कीजिए :

1) कबीर की साखियाँ दोहा छन्द में लिखी हुई हैं.
2) कबीर की साखियों में आत्माभिव्यक्ति है.
3) कबीर की रचनाओं में एक संवादधर्मिता है.
4) ईश्वर से मिलने का प्रयास उल्टी दिशा में चलने के समान है.
5) कबीर की काव्य-भाषा बोलचाल की भाषा नहीं है.

निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

1) _______ के अतिरिक्त कबीर के लिए सब मायामोह और मिथ्या है.
2) _______ की निन्दा कबीर का प्रिय विषय है.
3) शाश्वत सिर्फ ___________ है.
4) 'साखी' का तात्पर्य है – ___________________.
5) ____________ हमें ईश्वर प्राप्ति के असली उद्देश्य से भटकाती है.

2.7 उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. *कबीर* , विजयेन्द्र स्नातक(संपा.),राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
2. *कबीर ग्रन्थावली*, सम्पादक – डॉ. श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी,2.
3. *कबीर*, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
4. *कबीर की सखियाँ*, संकलन वियोगी हरि, भारतीय साहित्य संग्रह
5. *कबीर पदावली*, रामकुमार वर्मा,हिन्दी साहित्य सम्मलेन,प्रयाग
6. *कबीर ग्रन्थावली*, सम्पादक – डॉ. श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी,
7. *हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय*, पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ,
8. *कबीर*, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
9. *हिन्दी साहित्य कोश भाग-1*,धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल,वाराणसी
10. *हिन्दी साहित्य कोश भाग-2*,धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल,वाराणसी
11. *हिन्दी साहित्य का इतिहास*,आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,नागरी प्रचारणी सभा,वाराणसी
12. *हिन्दी साहित्य का उदभव और विकास*,हजारी प्रसाद द्विवेदी,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

वेब लिंक्स

1. http://hindisamay.com/kabir-granthawali/kabirgranth-index.htm
2. http://www.hindisamay.com/contentDetail.aspx?id=749&pageno=1
3. http://bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%95%E0%A4%AC%E0%A5%80%E0%A4%B0_%E0%A4%95%E0%A5%80_%E0%A4%B0%E0%A4%9A%E0%A4%A8%E0%A4%BE%E0%A4%8F%E0%A4%81
4. http://www.ignca.nic.in/coilnet/kabir055.htm
5. http://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%95%E0%A4%AC%E0%A5%80%E0%A4%B0
6. http://bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%AC%E0%A5%80%E0%A4%9C%E0%A4%95
7. https://vimisahitya.wordpress.com/2008/07/31/kabir_saki1/
8. https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B8%E0%A4%BE%E0%A4%96%E0%A5%80

इकाई 3 कबीर की भाषा

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 कबीर की भाषा के सम्बन्ध में विद्वानों के विचार

3.4 कबीर का शब्द भंडार

3.5 कबीर द्वारा प्रयुक्त विभिन्न भाषाओं के शब्द

3.6 कबीर द्वारा प्रयुक्त काव्य-रूप और छन्द

3.7 कबीर द्वारा प्रयुक्त अलंकार

3.8 कबीर की प्रतीक-योजना

3.9 कबीर की उलटबाँसियाँ

3.10 कबीर की व्यंग्यात्मक भाषा

3.11 कबीर काव्य में कोमलकान्त पदावली

3.12 सारबिंदु

3.13 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

3.14 उपयोगी पाठ्यसामग्री

3.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त आप –

- कबीर की रचनाओं में प्रयुक्त भाषा के विभिन्न रूपों से परिचित हो सकेंगे.
- कबीर की रचनाओं की विभिन्न शैलियों की जानकारी ले पाएँगे.
- कबीर की रचना और भाषा के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के मत जान पाएँगे.

3.2 प्रस्तावना

कबीर मूलतः भक्त थे. उन्होंने न तो काव्य-शास्त्र का अध्ययन किया था, न ही कविता करना उनका उद्देश्य था. फिर भी उनकी रचनाओं में भावों और विचारों का अंकन विलक्षण भाषा में हुआ है. शैली ऐसी चमत्कारपूर्ण है कि उनकी उक्तियाँ आज लोक में कहावतों और लोकोक्तियों के रूप में प्रचलित हैं. सृजन-सौष्ठव की दृष्टि से उनकी रचनाओं का महत्त्व असन्दिग्ध है.

3.3 कबीर की भाषा के सम्बन्ध में विद्वानों के विचार

हिन्दी साहित्य के इतिहास में कबीरदास जितने लोकप्रिय हैं, भाषा-प्रयोग के कारण उतने ही विवादास्पद भी. उनकी भाषा प्रयुक्ति के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के अलग-अलग मत हैं. स्वयं कबीर ने अपनी भाषा के सम्बन्ध में लिखा है –

हम पूरब के पूरबिया जात न पूछे कोय ॥

हमको तो सोई लखै धुर पूरब का होय ॥

'बीजक' की इस साखी के आधार पर कई विद्वानों ने कबीर की भाषा को 'पूरबी' कहा है.

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "बीजक की भाषा सधुक्कड़ी, अर्थात राजस्थानी-पंजाबी मिली खड़ी बोली है, पर रमैनी और सबद में गाने के पद हैं जिनमें काव्य की ब्रजभाषा और कहीं-कहीं पूरबी बोली का भी व्यवहार है (रामचन्द्र शुक्ल, *हिन्दी साहित्य का इतिहास*, पृ.80)."

श्यामसुन्दर दास के अनुसार "कबीर की भाषा का निर्णय करना टेढ़ी खीर है, क्योंकि वह खिचड़ी है... कबीर में केवल शब्द ही नहीं, क्रियापद, कारक चिह्नादि भी कई भाषाओं के मिलते हैं, क्रिया पदों के रूप अधिकतर ब्रजभाषा और खड़ी बोली के हैं. कारक चिह्नों में कै, सन, सा आदि अवधी के हैं, को ब्रज का है और थैं राजस्थानी का. इस पँचमेल खिचड़ी का कारण यह है कि उन्होंने दूर-दूर के साधु सन्तों का सत्संग किया था, जिससे स्वाभाविक ही उन पर भिन्न-भिन्न प्रान्तों की बोलियों का प्रभाव पड़ा (श्यामसुन्दर दास, '*कबीर ग्रन्थावली*' की भूमिका, पृ. 48)."

रामकुमार वर्मा के अनुसार, "कबीर के काव्य का व्याकरण पूर्वी हिन्दी रूप ही लिए हुए है. उसमें स्थान-स्थान पर पंजाबी प्रभाव अवश्य दृष्टिगत होता है (रामकुमार वर्मा, '*सन्त कबीर*' की भूमिका)."

बाबूराम सक्सेना उन्हें अवधी का प्रथम सन्त कवि मानते हैं.

उपर्युक्त विचारों से यह बात स्पष्ट है कि कबीर के यहाँ कई भाषाओं का मेल है. इसलिए उनकी रचनाओं में भाषा और व्याकरण का निश्चित और स्थिर रूप नहीं मिलता. कबीर की भाषा पर विचार करते समय लगातार ध्यान रखना होगा कि उन्होंने दोहे, पद इत्यादि लिखे नहीं कहे थे. बहुप्रचलित विषय है, कि कबीर उत्तर भारत में एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते थे. सम्भवतः इसलिए उन्होंने

प्रादेशिक बोलियों के शब्दों का प्रयोग अपनी कविता में किया है. उनके कहे गए पद और साखियाँ कई पीढ़ियों तक मौखिक रूप में ही रहे, अतः उनके मूल रूप में परिवर्तन की सम्भावना से भी इनकार नहीं किया जा सकता. जब अलग-अलग प्रदेशों में उनकी रचनाओं को लिपिबद्ध किया गया होगा, तब प्रदेश विशेष का प्रभाव भी भाषा पर अवश्य आया होगा, परिणामस्वरूप आज हमारे सामने कबीर की कविता के जो पाठ उपलब्ध हैं, उनमें भाषा के विभिन्न रूप दिखाई पड़ते हैं. इसके साथ ही "लगभग 1000 ई. के अपभ्रंश के विभिन्न रूपों से आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास प्रारम्भ हुआ तथा लगभग 1500 ई. तक उन भाषाओं का रूप स्पष्ट हुआ. अतः इन पाँच सौ वर्षों के बीच जितने भी कवि हुए हैं, उनकी भाषा सन्धिकालीन है. विभिन्न व्याकरणिक प्रवृत्तियों के बीज उनकी भाषाओं में हैं (महेंद्र, *कबीर की भाषा*, पृ. 21)." कबीर की रचनाएँ भी इसी में शामिल हैं.

3.4 कबीर का शब्द भण्डार

शब्द भण्डार की दृष्टि से कबीर की भाषा में अवधी, ब्रज, खड़ी बोली, राजस्थानी, पंजाबी आदि के शब्द और रूप मिलते हैं. इसके अतिरिक्त कबीर पर नाथ पन्थ का प्रभाव भी रहा है, उस समय अपभ्रंश भाषा अपने अन्तिम स्वरूप में थी. अतः अपभ्रंश के शब्द भी कबीर की कविता में देखने को मिलते हैं. कबीर ने संस्कृत को 'कूप जल' कहा है, लेकिन इसके बावजूद तत्सम शब्द उनके काव्य में मिल जाते हैं. रहस्यवाद और दर्शन से जुड़ी पदावली में तत्सम शब्दों का समावेश है. तत्कालीन समय में मुग़ल शासन के अन्तर्गत दरबार की भाषा फ़ारसी थी और इस्लाम की भाषा अरबी. अतः इन भाषाओं के शब्दों का समावेश भी उनके साहित्य में हुआ. कबीर जब इस्लाम धर्म में व्याप्त पाखण्डों पर कटाक्ष करते हैं तो उनकी भाषा में अरबी-फ़ारसी शब्दों का प्रयोग करते हैं, और जब वे हिन्दू धर्म की रूढ़िवादिता की पोल खोलते हैं तो तत्सम शब्दों का प्रयोग करते हैं. इसके अतिरिक्त विभिन्न देशज शब्दों का प्रयोग भी उनकी रचनाओं में मिलता है. कबीर पेशे से जुलाहा थे. अतः उनकी कविता में जुलाहों, बुनकरों, दस्तकारी, हाट-बाज़ार, खेती-किसानी आदि क्षेत्रों में प्रयुक्त शब्द भी मिलते हैं.

3.5 कबीर द्वारा प्रयुक्त विभिन्न भाषाओं के शब्द

खड़ी बोली

भारी कहूँ तो बहु डरूँ, हलका कहूँ तो झूठ।

मैं का जानों राम को, नैनों कबहुँ न दीठ ॥

उर्दू

मीयाँ तुम्हसो बोल्याँ वाणी नहीं आवै ।

हम मसकीन खुदाई बन्दे, तुम्हारा जस मनि भावै ॥

अल्लाह अवली दीं का साहिब, जारे नहीं फुरमाया ।

मुरसिद पीर तुम्हारै है को, कहौ कहाँ थै आया ॥

अरबी-फारसी

हमरकत रहबरहुँ समाँ मैं खुर्दा सुभाँ विसियार ।

हमजिमीं आसमाँन खलिंक गुन्दा मुसकिल कार ॥

राजस्थानी

आँखड़िया प्रेम कसाइयाँ, लोग जाने दूखड़ियाँ ।

साईं अपने कारनै, रोई रोई रातड़ियाँ ॥

अवधी

साध सांगत मिली करहु विचारा ।

ब्रज

घर जारौ

भोजपुरी

जलहै तनि बुनी पार न पावल ।

वस्तुतः कबीर ने अपनी रचनाओं में शब्दों का प्रयोग भाव, विचार, विषय और व्यक्ति के अनुरूप किया है. कबीर की भाषा को विद्वानों ने 'सधुक्कड़ी' नाम भी दिया है. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर की भाषा की व्याकरणिक और भाषा वैज्ञानिक विशेषताएँ नहीं गिनाई. उन्होंने कबीर की कविता के कलात्मक उपकरण के रूप में भाषा का विवेचन किया और उसका सम्बन्ध कबीर के व्यक्तित्व से जोड़ा. हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में कहें तो "भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था. वे वाणी के डिक्टेटर

थे. जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है, उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया – बन गया है तो सीधे-सीधे, नहीं तो दरेरा देकर. भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार-सी नज़र आती है. उसमें मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइश को नाहीं कर सके. और अकह कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की तो जैसी ताकत कबीर की भाषा में है, वैसी बहुत कम लेखकों में पाई जाती है (हजारीप्रसाद द्विवेदी, *कबीर*, पृ.170)."

3.6 कबीर द्वारा प्रयुक्त काव्य-रूप और छन्द

कबीर ने अपनी मुक्तक रचनाओं साखी, सबद और रमैनी में मुख्य रूप से तत्कालीन समय में लोक में बहु-प्रचलित भाषा का प्रयोग किया. साखी, दोहे से मिलती-जुलती है. कबीर के 'सबदों' में लोक में गाए जाने वाले राग-रागिनियों और पदों का प्रयोग किया गया है. रमैनियों में अधिकांशतः कुछ चौपाइयों के बाद कबीर ने एक साखी का प्रयोग किया है. इन छन्दों के अतिरिक्त कबीर नें चौतीसी, कहरा, हिण्डोला, बसन्त चाचर, बेलि आदि का भी कई स्थानों पर प्रयोग किया है. किन्तु इतना तय है कि कबीर ने शास्त्रीय दृष्टि से किसी भी छन्द का प्रयोग नहीं किया है. वस्तुतः "कबीर दास छन्दशास्त्र से अनभिज्ञ थे, यहाँ तक कि वे दोहों को पिंगल की खराद पर न चढ़ा सके. डफली बजाकर गाने में जो शब्द जिस रूप में निकल गया, वही ठीक था. मात्राओं के घट-बढ़ जाने की चिन्ता करना व्यर्थ था. पर साथ ही कबीर में प्रतिभा थी, मौलिकता थी, उन्हें कुछ सन्देश देना था और उनके लिए शब्द की मात्रा गिनने की आवश्यकता न थी, उन्हें तो इस ढंग से अपनी बातें कहने की आवश्यकता थी, जो सुनने वाले के हृदय में पैठ जाए और पैठकर जम जाए (सं श्यामसुन्दर दास, *कबीर ग्रंथावली*, पृ.45)." हालाँकि '*गुरु ग्रन्थ साहिब*' में संकलित कबीर के पदों में विभिन्न रागों के संकेत हैं, जिनसे पता लगता है कि कबीर को संगीत व लोक में बजाए जाने वाले वाद्यों का सामान्य ज्ञान था.

3.7 कबीर द्वारा प्रयुक्त अलंकार

कबीर का लक्ष्य कविता करना नहीं, सांसारिक लोगों को जीवन का मर्म समझाने के लिए सहज भाव से अपने भावों की अभिव्यक्ति करना था. "उन्होंने अपनी उक्तियों पर कभी गुण, अलंकारादि का कृत्रिम मुलम्मा चढ़ाने की चेष्टा नहीं की थी. यह बात दूसरी है कि उक्ति और उपदेशों को अत्यधिक प्रभावात्मक

बनाने के प्रयत्न में अलंकारों की योजना स्वतः हो गई हो. अलंकार कबीर के लिए साध्य नहीं, स्वाभाविक साधन मात्र थे (सं विजयेंद्र स्नातक, गोविन्द त्रिगुणायत, *कबीर*, पृ.168).” इस सहज भाव में भी कबीर की कविता में अलंकारों की सुन्दर योजना बन पड़ी है. कुछ अलंकारों के उदाहारण इस प्रकार हैं –

अनुप्रास

लोक जानि न भूलो भाई ।

खालिक खलक खलक मैं खालिक सब घट रह्यो समाई ॥

रूपक

नैनों की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय ।

पलकों की चिक डालिकै, पिय को लिया रिझाय ॥

उपमा और उत्प्रेक्षा

पानी केरा बुदबुदा, अस मानस की जाति ।

देखत ही छुप जाएँगे, ज्यों तारे प्रभाति ॥

विभावना

बिन मुख खाइ चरन बिन चालै, बिन जिभ्या गुण गावै ।

विरोधाभास

कबीर आगे-आगे दौ जलै, पीछे हरिया होइ ।

बलिहारी ता बिष की जड़ काट्यां फल होइ ॥

दृष्टांत

कबीर कहा गरबियौ, इस जोबन की आस ।

टेसू फूले दिवस चारि, खंखर भये पलास ॥

रूपकातिशयोक्ति

कबीर निरभै राम जपि जब लगि दीवै बाति ।

तेल घट्या बाती बुझी तब सोवैगा दिन राति ॥

विभिन्न भावों-विचारों को प्रकट करते समय कबीर की रचनाओं में अलंकारों का सहज और स्वाभाविक समावेश चाहे-अनचाहे होता गया है.

3.8 कबीर की प्रतीक-योजना

भारतीय साहित्य में प्रतीकों का प्रयोग आरम्भ से ही देखने को मिलता है. वेदों, उपनिषदों में प्रतीकों का प्रयोग विद्वानों ने माना है. सूफी काव्य में आत्मा-परमात्मा का सम्बन्ध व्यक्त करने के लिए प्रतीक बहुतायत में देखने को मिलते हैं. कबीर ने आत्मा-परमात्मा के रहस्यात्मक सम्बन्ध और उनके विरह-मिलन की स्थिति प्रकट करने हेतु दाम्पत्य प्रतीकों का सहारा लिया है. ऐसे स्थलों पर भावों की तीव्रता, प्रेम की उत्कटता मार्मिक बन पड़ी है. यहाँ आध्यात्मिक प्रेम से सम्बन्धित निम्नलिखित पद में आत्मा रूपी वधू, परमात्मा रूपी प्रिय से मिलने के लिए आतुर और व्याकुल है –

कियो सिंगार मिलन के ताईं, हरि न मिले जगजीवन गुसाईं ।

हरि मेरो पीव मैं हरि की बहुरिया, राम बड़े मैं छुटक लहरिया ॥

धनि पिय एकै संग बसेरा, सेज एक पै मिलन दुहेरा ।

धन्न सुहागिन जो पिय भावै, कही कबीर फिर जानमि न पावै ॥

भक्ति-परम्परा के अनुरूप कबीर ने भक्त और भगवान का सम्बन्ध बताते हुए कई बार स्वामी-सेवक एवं वात्सल्य प्रतीकों का भी प्रयोग किया है. माता–पुत्र के प्रतीक का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

हरि जननी मैं बालिक तेरा, काहे न औगुण बकसहु मेरा ।

सुत अपराध करै दिन केते, जननी के चित रहैं न तेते ॥

कर गहि करै जो घाता, तऊ न हेत उतारै माता ।

कहै कबीर एक बुद्धि विचारी, बालक दुखी दुखी महतारी ॥

साधनात्मक रहस्यवाद के अन्तर्गत हठयोग सम्बन्धी दोहों में कबीर ने इड़ा, पिंगला, कुण्डलिनी, सहस्रार कमल, दिव्य ज्योति इत्यादि प्रतीकों का प्रयोग भी बहुतायत से किया है.

चौंसठ दीया जँय के चौदह चन्दा माहिं ।

तेहि घर किसका चानडो जेहिं घर गोविन्द नाहिं ॥

यहाँ 'चौंसठ' शब्द चौंसठ कलाओं का तथा 'चौदह' शब्द चौदह विद्याओं का प्रतीक है. ये संख्यामूलक शब्द पारिभाषिक प्रतीक के उदाहरण हैं.

3.9 कबीर की उलटबाँसियाँ

उलटबाँसी का शाब्दिक अर्थ है – 'उल्टी उक्ति' अर्थात ऐसी बात जो विपर्यय का बोध कराए. उलटबाँसी अपनी बात की ओर ध्यान आकर्षित करने का एक कारगर माध्यम है. "ये उलटबासियाँ बहुधा अटपटी बानियों के रूप में रची गई हैं, जिस कारण इनके गूढ़ आशय को शीघ्र न समझ पाने वाला इन्हें सुनकर आश्चर्य में अवाक रह जाता है और जब कभी इन पर ध्यानपूर्वक विचार कर लेने पर वह इन शब्दों के पीछे निहित रहस्य को जान पाता है तो उसे अपार आनन्द भी मिलता है (परशुराम चतुर्वेदी, *कबीर साहित्य की परख,* पृ.150)." भारत में कबीर से पहले वेदों, उपनिषदों, नाथ-सिद्धों के साहित्य में उलटबाँसी की परम्परा देखने को मिलती है.

कबीर अपनी उलटबाँसियों के लिए भी प्रसिद्ध रहे हैं. विद्वानों नें कबीर की उलटबाँसियों पर नाथ-सिद्धों का प्रभाव माना है. उनके यहाँ आध्यात्मिक उक्तियों की अभिव्यक्ति का भरपूर इस्तेमाल हुआ है. "उलटबासियाँ उन्होंने साधारण जनता को अपने ज्ञान से आतंकित करने के लिए नहीं लिखी. उनका लक्ष्य पोथी ज्ञान से लदे पण्डित थे, जिनके बीच कबीर को रहना और जीना था. जाहिर है कि उनकी उलटबाँसियों के अर्थ पोथियों में नहीं थे और पंडितों की नगरी काशी का कोई भी पण्डित उनका अर्थ करने में समर्थ नहीं था. पंडितों के अहंकार को कबीर की ये उलटबासियाँ तोड़ती हैं, उनके सारे ज्ञान की पोल खोल देती हैं (शिवकुमार मिश्र, *भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य,* पृ.83)." कबीर ने उलटबाँसियों का प्रयोग विशेष रूप से संसार, आत्मा-परमात्मा, योग, प्रेम-साधना, धर्म से सम्बन्धित पदों में किया है. कबीर की उलटबाँसी का एक पद द्रष्टव्य है –

एक अचम्भा देखा रे भाई ।

ठाढ़ा सिंघ चरावै गाई ॥

पहलै पूत पीछै भई माइ ।

चेला कैन गुरु लागै पाइ ॥

जल की मछली तरवर ब्याई ।

पकड़ी बिलाई मुर्गे खाई ॥

बैलहि डारि गूंनि घरि आई ।

कुत्ता कूँ लै गई बिलाई ॥

तलि करि साखा ऊपरि करि मूल ।

बहुत भांति जड़ लागे फूल ॥

कहै कबीर या पद कौं बूझै ।

ताकूँ तीन्यूँ त्रिभुवन सूझै ॥

उलटबाँसी शैली के पदों में प्रतीकों की बहुतायत है, जिनमें आध्यात्मिक धरातल पर रहस्यात्मक, सूक्ष्म तथा गम्भीर अर्थों की व्यंजना की गई है. कबीर की कुछ उलटबाँसियों ने पहेलियों का रूप भी धारण कर लिया है. कई स्थानों पर हठयोग की पारिभाषिक शब्दावली के कारण ऐसी उक्तियाँ अर्थ की दृष्टि से दुरूह भी हो गई हैं. किन्तु फिर भी कहा जा सकता है कि "…कबीर की उलटबाँसियों का एक-एक प्रतीक अपने मर्म के लिए अनिवार्य है. प्रतीकों के पीछे छिपा हुआ अर्थ उद्घाटित होने पर जीवन और साधना-सम्बन्धी अनुभूतियों के रहस्य का भी उद्घाटन हो जाता है (सं विजयेन्द्र स्नातक, *कबीर*, पृ.190)."

3.10 कबीर की व्यंग्यात्मक भाषा

कबीर का व्यक्तित्व विद्रोही था. तत्कालीन सामाजिक रूढ़ियों को वे तर्क और मानवता की कसौटी पर परखते हुए, नकारते हुए और उन पर व्यंग्य करते चले हैं. इस व्यंग्यात्मकता के कारण रचना महत्त्वपूर्ण और विशेष बन गई है. समाज में फैले हुए बाह्याडम्बरों, धार्मिक रूढ़ियों, कर्मकांडों, जातिवाद और मिथ्याचारों पर चोट करते समय व्यंग्यात्मक प्रहार देखते ही बनता है. ऐसे स्थलों पर उनकी भाषा की भंगिमा, तेवर और पैनापन प्रखरता से व्यक्त होता है. 'सिर मुँडवाने' की धार्मिक रूढ़ि पर कटाक्ष करते हुए कबीर कहते हैं –

केसौ कहा बिगाड़िया, जे मूँडै सौ बार ।

मन कौ काहे न मूँडिये, जामै विषै विकार ॥

इसी प्रकार इस्लाम धर्म में मस्जिद पर चढ़कर अजान देने की प्रवृति को भी उन्होंने आड़े हाथों लिया है. तत्कालीन समाज में अलग-अलग धर्मों और सम्प्रदायों के तथाकथित सन्तों, योगियों, साधुओं के दिखावटी व्यवहार और समाज को भ्रमित करने वाले क्रिया-व्यापारों पर भी कबीर की दृष्टि गई और उन्होंने अपने तरीके से उनका भण्डाफोड़ किया –

मन न रंगाए, रंगाए जोगी कपरा ।

आसन मारी मन्दिर में बैठे, नाम छाँड़ी पूजन लागे पथरा ।

कनवा फड़ाय जोगी जतावा बढ़ोलें, दाढ़ी बढ़ाय जोगी होइ गैले बकरा ।

जंगल जाय जोगी धुनिया रमौले, काम ज़राय जोगी होय गैले हिजरा ।

मथवा मुँडाय जोगी कपड़ा रंगौले, गीता बाँच के होय गैले लबरा ।

कहत कबीर सुनो भाई साधो, जम दखजवाँ बाँधल जैबे बकरा ।

मानवीय मूल्यों की वास्तविकता से अवगत कराने के लिए कबीर ने भाषा में व्यंग्यात्मक मुद्रा अपनाई. उनसे पहले हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस प्रकार की मारक उक्तियाँ बहुत कम देखने को मिलती हैं. "हिन्दी कविता के हज़ारो वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यंग्यकार पैदा नहीं हुआ... अत्यन्त सीधी सरल भाषा में वे ऐसी चोट करते हैं कि चोट खाने वालों के लिए केवल धूल झाड़कर चलने के सिवाय कोई रास्ता नहीं रहता (हजारीप्रसाद द्विवेदी, *कबीर*, पृ.170)."

3.11 कबीर काव्य में कोमलकान्त पदावली

कबीर की भक्ति सम्बन्धी रचनाओं में उनके हृदय का कोमल और भावुक रूप देखने को मिलता है. ऐसे पदों में भाषा भी स्वयमेव कोमल रूप धारण करके चली है. भक्त हृदय की सरलता और निर्मलता कोमलकान्त पदावली में सहज रूप से प्रभावशाली बन पड़ी है –

साईं इतना दीजिए, जामै कुटुम समाय ।

मैं भी भूखा न रहूँ, साधू न भूखा जाय ॥

एक अन्य स्थल पर कबीर परम-तत्त्व की खोज करने वाले मनुष्य को बड़ी सीधी सरल भाषा में समझाते हुए कहते हैं कि वह तो तेरे भीतर, हर एक साँस में बसा हुआ है–

मोको कहाँ ढूँढें बन्दे, मैं तो तेरे पास में।

ना मैं देवल ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में।

ना तो कोनो क्रिया कर्म में, ना योगी बैराग में।

खोजी होय तो तुरते मिलिहौं पल भर की तालास में।

कहैं कबीर सुनो भाई साधो, सब स्वाँसों की स्वाँस में।

3.12 सारबिंदु

कबीर की भाषा उनके व्यक्तित्व के अनुरूप जीवन्त और मुखर है. कबीरदास 'कागद' पर लिखने वाले परम्परागत कवि नहीं थे. उन्होंने ईश्वर की साधना के समय, दिग्भ्रमित समाज को सही दिशा और वास्तविक जीवन-मूल्य दिखाते समय अपने आध्यात्मिक, दार्शनिक और रहस्यवादी भावों और विचारों को जब और जिस रूप में प्रकट किया, उन्हीं को आज हम कबीर की कविता के रूप में देख रहे हैं. केवल शास्त्रीय नियमों की कसौटी पर कबीर की कविता को परखना सन्तुलित उद्यम नहीं है. क्योंकि "कविता के लिए उन्होंने कविता नहीं की है. उनकी विचारधारा सत्य की खोज में बही है, उसी का प्रकाश करना उनका ध्येय है. उनकी विचारधारा का प्रवाह जीवनधारा के प्रवाह से भिन्न नहीं है, उसमें उनका हृदय घुला-मिला है. उनकी प्रतिभा हृदय समन्वित है. उनकी बातों में बल है, जो दूसरे पर प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकतीं. अक्खड़ ढंग से कही होने पर भी उनकी बेलाग बातों में एक और ही मिठास है, जो खरी-खरी बातें कहने वाले ही की बातों में मिल सकती है. उनकी सत्यभाषिता और प्रतिभा का ही फल है कि उनकी बहुत सी उक्तियाँ लोगों की जबान पर चढ़ कर कहावतों के रूप में चल पड़ी हैं. हार्दिक उमंग की लपेट में जो सहज विदग्धता उनकी उक्तियों में आ गई है, वह अत्यन्त भावापन्न है. उसी में उनकी प्रतिभा का चमत्कार है (सं. श्यामसुन्दर दास, *कबीर ग्रंथावली*, पृ.44)." निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कबीर की कविता की भाषा में कुछ भी आरोपित या सायास नहीं है. सीधी-सादी, सरल, सहज और स्वाभाविक भाषा में भी विषयानुरूप अलंकारिकता, प्रतीकात्मकता, पारिभाषिकता, संगीतात्मकता आदि गुण आ गए हैं.

3.13 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर विस्तार से दीजिए :

1) कबीर की भाषा पर विचार प्रस्तुत कीजिए.
2) कबीर के द्वारा प्रयुक्त छंद, अलंकार, प्रतीक आदि भाषिक उपादानों को सोदाहरण प्रस्तुत कीजिए.

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :

1) कबीर की उलटबाँसियाँ
2) कबीर की भाषा में व्यंग्य का प्रयोग
3) कबीर काव्य में कोमलकांत पदावली
4) कबीर की प्रतीक योजना

निम्नलिखित वाक्यों के सही गलत होने का निर्धारण कीजिए :

1) कई विद्वानों ने कबीर की भाषा को 'पूरबी' कहा है.
2) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार बीजक की भाषा सधुक्कड़ी है.
3) कबीर की भाषा में बांग्ला के बहुतायत मिलते हैं.
4) कबीर ने अपने काव्य के लिए केवल दोहा छंद का प्रयोग किया है.
5) अलंकार कबीर के लिए साध्य नहीं, स्वाभाविक साधन मात्र थे.

निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

1) _________ कबीर को अवधी का प्रथम सन्त कवि मानते हैं.
2) _________ ने कबीर को वाणी का डिक्टेटर कहा है.
3) __________ में संकलित कबीर के पदों में विभिन्न रागों के संकेत हैं.
4) मानवीय मूल्यों की वास्तविकता से अवगत कराने के लिए कबीर ने भाषा में _________ अपनाई.
5) __________ के पदों में प्रतीकों की बहुतायत है.

3.14 उपयोगी पाठ्यसामग्री

पुस्तक

1. *कबीर का रहस्यवाद : कबीर के दार्शनिक विचारों का गंभीर विवेचन*, रामकुमार वर्मा,साहित्य भवन, इलाहाबाद

2. *कबीर : एक अनुशीलन*, रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन, इलाहाबाद

3. *कबीर-साहित्य की परख*, परशुराम चतुर्वेदी, भारती भण्डार, इलाहाबाद

4. *कबीर* , विजयेन्द्र स्नातक(संपा.),राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

5. *कबीर ग्रन्थावली*, सम्पादक – डॉ. श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी

6. *कबीर*, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

7. *कबीर की सखियाँ*, संकलन वियोगी हरि, भारतीय साहित्य संग्रह

8. *कबीर पदावली*, रामकुमार वर्मा,हिन्दी साहित्य सम्मलेन,प्रयाग

9. *हिन्दी साहित्य का इतिहास*,आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,नागरी प्रचारणी सभा,वाराणसी

10. *हिन्दी साहित्य का उदभव और विकास*,हजारी प्रसाद द्विवेदी,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

वेब लिंक्स

1. http://bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%95%E0%A4%AC%E0%A5%80%E0%A4%B0_%E0%A4%95%E0%A5%80_%E0%A4%AD%E0%A4%BE%E0%A4%B7%E0%A4%BE_%E0%A4%B6%E0%A5%88%E0%A4%B2%E0%A5%80
2. http://bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%95%E0%A4%AC%E0%A5%80%E0%A4%B0
3. https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%95%E0%A4%AC%E0%A5%80%E0%A4%B0
4. http://bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%AC%E0%A5%80%E0%A4%9C%E0%A4%95
5. https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%AC%E0%A5%80%E0%A4%9C%E0%A4%95
6. https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B0%E0%A4%AE%E0%A5%88%E0%A4%A8%E0%A5%80_%E0%A4%94%E0%A4%B0_%E0%A4%AC%E0%A5%80%E0%A4%9C%E0%A4%95
7. https://www.youtube.com/watch?v=44M6yyIxJYk
8. https://www.youtube.com/watch?v=WEWbl-YbowU

इकाई 4 कबीर : दर्शन और रहस्य भावना

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 कबीर की मूल मान्यताएँ

4.3.1 अद्वैत दर्शन का प्रभाव

4.3.2 वैष्णव दर्शन का प्रभाव

4.3.3 सूफी दर्शन का प्रभाव

4.3.4. हठयोग और शून्य दर्शन का प्रभाव

4.4 कबीर की रहस्य भावना

4.5 सारबिंदु

4.6 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

4.7 उपयोगी पाठ्यसामग्री

4.1 पाठ का उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त आप –

– कबीर की कविता के दार्शनिक पहलू से परिचित हो सकेंगे.
– समकालीन दर्शनों के कबीर पर पड़ने वाले प्रभाव को जान सकेंगे.
– कबीर के काव्य में मौजूद रहस्य-भावना का स्वरूप समझ सकेंगे.
– कबीर के दर्शन और रहस्य-भावना सम्बन्धी विभिन्न आलोचकों के मतों से अवगत हो सकेंगे.
– कबीर-काव्य की लोकप्रियता और उनके दर्शन और रहस्य-भावना के बीच के सम्बन्धों को रेखांकित कर सकेंगे.

4.2 प्रस्तावना

कबीर का काव्य उनके जीवन-दर्शन से भरा हुआ है. कुछ दर्शन श्रुति परम्परा से, तो कुछ सत्संगति से सीखे गए हैं, जिनमें कबीर ने अपने अनुभव के अनुसार परिष्कार कर लिया. जो अनुकूल लगा, उसे अपनाया और जो प्रतिकूल लगा, उसे त्याग दिया. संग्रह और त्याग के विवेक ने कबीर की कविता को अनेक

दर्शनों का सार बना दिया है. इसमें बहुत कुछ अच्छा है जो अनेक दिशाओं से आया है. इसका एक पक्ष वेदान्त से जुड़ता है, दूसरा सूफियों से. एक पक्ष सिद्धों-नाथों से जुड़ता है, तो अन्य वैष्णवों से. कबीर काव्य में वैराग्य है, नीति है, ज्ञान है, साधना है और इनके साथ ही माधुर्य और रहस्य का संसार भी है. ऐसे में यह जानना आवश्यक है कि कबीर की कविता का दार्शनिक स्वरूप क्या है? वह किन दर्शनों से प्रभावित है? ये दर्शन कविता में किस रूप में आए हैं? इन्होंने कबीर की साधना को किस तरह प्रभावित किया है? कबीर के माधुर्य भाव के पदों का रहस्यवाद से क्या सम्बन्ध है? कबीर की कविता की दीर्घजीविता और लोकप्रियता में उसके दर्शन और रहस्यवाद का क्या योगदान है? इन्हीं सवालों को ध्यान में रखकर कबीर के अन्तर्गत 'कबीर का दर्शन और रहस्य भावना' शीर्षक अध्याय शामिल किया गया है.

4.3. कबीर की मूल मान्यताएँ

कबीर की कविता में दर्शन निहित है. किन्तु वह किसी एक दर्शन का अनुवाद नहीं है. उसमें शून्यवाद, अद्वैतवाद, वैष्णववाद, सूफीवाद अनेक दर्शनों के तत्त्व मिलते हैं. सम्भवतः इसका कारण यह है कि कबीर ने किसी एक गुरु से किसी दर्शन विशेष की दीक्षा नहीं ली थी. उनका शिक्षक उनके जीवन से प्राप्त अनुभव था. उन्होंने जीवन को श्रेष्ठ बना सकने वाले विचारों को आत्मसात किया. ये विचार ही उनकी कविता का दर्शन बन गया. वे उसे ही कविता के सहारे औरों तक पहुँचाते रहे. उनकी कविता में ब्रह्म, जीव, जगत और माया के माध्यम से उनके दार्शनिक चिन्तन का परिचय मिलता है. ज्ञान और तत्त्व की गूढ़तम दार्शनिक उद्भावना उनकी कविता में आकर सहज बोधगम्य बन गई है. उन्होंने दर्शन के सन्दर्भ में तत्त्वतः निर्गुण को सत्य माना है. ज्ञान के सन्दर्भ में उन्होंने कहा कि हमारा ध्यान वहाँ व्याप्त निर्गुण और सगुन से परे है. वे ईश्वर तक पहुँचने का साधन भक्ति और प्रेम दोनों को मानते हैं.

कबीर के समय में ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग दिखाने वाले दर्शनों में अद्वैतवाद, एकेश्वरवाद, वैष्णववाद, सूफीवाद और शून्यवाद प्रमुख थे. उनकी सारग्राही प्रतिभा ने इन सबसे कुछ न कुछ अपनी सोच मिलाकर अपना मार्ग तैयार किया. उनकी कविता के दार्शनिक स्वरूप के बारे में शुक्ल जी ने लिखा – "जहाँ तक पता चलता है, निर्गुण मार्ग के निर्दिष्ट प्रवर्तक कबीरदास ही थे, जिन्होंने एक ओर तो स्वामी रामानन्द जी के शिष्य होकर भारतीय अद्वैतवाद की कुछ स्थूल बातें ग्रहण की; और दूसरी ओर योगियों और सूफी फकीरों के संस्कार प्राप्त किए. वैष्णवों से उन्होंने अहिंसावाद और प्रपत्तिवाद लिए. इसी से उनके तथा

निर्गुणवाद वाले और दूसरे सन्तों के वचनों में कहीं भारतीय अद्वैतवाद की झलक मिलती है, तो कहीं योगियों के नाड़ीचक्र की, कहीं सूफियों के प्रेम-तत्त्व की, कहीं पैगम्बरी कट्टर खुदावाद की और कहीं अहिंसावाद की. अत: तात्त्विक दृष्टि से न तो हम इन्हें पूरे अद्वैतवादी कह सकते हैं और न एकेश्वरवादी. दोनों का मिला-जुला भाव इनकी बानी में मिलता है." शुक्ल जी ने कबीर काव्य की उन विशेषताओं को भी रेखांकित किया है, जिनका विभिन्न दर्शनों से सम्बन्ध है. मसलन सूफी दर्शन का सम्बन्ध ब्रह्म को प्रेमी मानकर लिखे गए प्रेम व्यापार का वर्णन करने वाले दोहों और पदों से है. शुक्ल जी लिखते हैं "सारांश यह कि जो ब्रह्म हिन्दुओं की विचार-पद्धति में ज्ञान मार्ग का एक निरूपण था, उसी को कबीर ने सूफियों के ढर्रे पर उपासना का ही विषय नहीं, प्रेम का भी विषय बनाया और उसकी प्राप्ति के लिए हठयोगियों की साधना का समर्थन किया. इस प्रकार उन्होंने भारतीय ब्रह्मवाद के साथ सूफियों के भावात्मक रहस्यवाद, हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद और वैष्णवों के अहिंसावाद तथा प्रपत्तिवाद का मेल करके अपना पन्थ खड़ा किया. उनकी बानी में ये सब अवयव स्पष्ट लक्षित होते हैं." कबीर द्वारा अपना पन्थ खड़ा करने की बात के अलावा आचार्य शुक्ल की उनपर विभिन्न दर्शनों के प्रभाव बताने वाली शेष सारी बातें ठीक हैं. अब प्रश्न यह है कि बहुत से परस्पर विरोधी लगने वाले दर्शन कबीर के यहाँ एक साथ कैसे मौजूद रह सकते हैं. इस समस्या पर विचार करते हुए हजारीप्रसाद द्विवेदी अपनी पुस्तक *कबीर* के *निर्गुण राम* शीर्षक अध्याय में दिखाते हैं कि कबीर में कैसे इन परस्पर विरोधी दर्शनों का समाहार हो गया है. वे लिखते हैं कि – "कबीरदास के पदों से, जैसा कि हम देखेंगे एकेश्वरवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, अद्वैतवाद, द्वैताद्वैत, विलक्षणवाद आदि कई परस्पर विरोधी मतों के समर्थन हो सकते हैं, पर इस विरोध का कारण कबीरदास के विचारों की अस्थिरता नहीं है, बल्कि यह है कि वे भगवान को अनुभवैकगम्य और निखिलातीत तथा समस्त ऐश्वर्यों और विभूतियों का आधार समझते थे. इसलिए लौकिक दृष्टि से जो बातें परस्पर विरोधी दिखती हैं, अलौकिक भगवत रूप में सब घट जाती हैं." कबीर ने ईश्वर की अलग तरह की पहचान विकसित की थी. उसे आत्मसात और अभिव्यक्त करने में उन्हें जहाँ से जो भी बेहतर मिला, उन्होंने अपना लिया. वे दर्शनों के विरोध के तर्कजाल में पड़ने के बजाय उसे अनुभव की कसौटी पर परखकर उसका सार अपनाते रहे. इसलिए भी विरोधी लगने वाले दर्शन उनकी कविता में एकाकार हो गए हैं. हमें इन दर्शनों की कबीर की कविता में मौजूदगी को थोड़ा विस्तार से समझ लेना चाहिए.

कबीर की मूल स्थापना यह है कि यह जगत माया है. सत्य नहीं है. माया के कारण यह सत्य प्रतीत होता है, परन्तु यह सत्य होता नहीं. सारा संसार 'भवसागर' है. एक साखी में कबीर कहते हैं कि जन्म देने वाली माँ अपनी नहीं है. वह परायी है. पिता भी पराया है. और इन सब लोगों के साथ हम सब भी पराए है. इस संसार में हम नदी की नाव के यात्री के रूप में संयोगवश मिल गए हैं. ज्यों ही नदी पार कर लेंगे अर्थात इस भवसागर को पार कर लेंगे तब अपने-अपने रास्ते पर चले जाएँगे. इसे कबीर ने अनेक साखियों और पदों में व्यक्त किया है कि हमारे माता-पिता, भाई-बहन के रिश्ते 'सत्य' नहीं है. सब माया है. यदि इनके कारण कोई पाप करता है, अपनी आत्मा का हनन करता है, तो उसका जिम्मेदार वह स्वयं है.

आगे वे जीव को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि यह संसार रूपी घर तुम्हारा अपना नहीं है. अपना वास्तविक घर तो परमात्मा का स्थान है. इसलिए यहाँ जो कुछ करना हो, पाप-पुण्य कमाकर अपने घर चले जाओ. इसलिए कबीर दास कहते है कि मनुष्य के जीवन का एक ही उद्देश्य है जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति और परमात्मा का साहचर्य. इसलिए कबीर कहते हैं कि *तेरी संगी कोउ नहीं* है. मनुष्य अकेला इस संसार में आता है और खाली हाथ अकेला ही जाता है. यहाँ कबीर अद्वैतवादी की तरह सोचते है कि ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या है. इसका पूरा एक दर्शन है, जिसे कबीर बार-बार दुहराते है.

माया – कबीर माया की धारणा का समर्थन करते हैं और उसके विविध क्रियाकलापों का वर्णन करते हैं. माया की धारणा भारतीय चिन्तन में प्रमुखता से आती है. कबीर के अनुसार इस माया के कारण जीव भ्रम में पड़ जाता है. वह झूठ को सच मान लेता है और इसी कारण अपने अमूल्य मानव जीवन को नष्ट कर देता है. माया का यह फलक बहुत विस्तृत है. यह संसार माया है. घर-गृहस्थी का सारा दैनिक कार्य व्यापार माया है. हमारी पाँचो ज्ञानेन्द्रियाँ माया के वश में है. माया अज्ञान का अन्धकार है. माया भ्रम है. माया अज्ञान का आवरण है. मूर्तिपूजा माया का रूप है. अहंकार माया के कारण है. सांसारिक सम्पत्ति माया है. सुख-भोग सब माया है. इससे मुक्ति ज्ञान द्वारा प्राप्त होती है. और ज्ञान गुरु देता है. इसलिए गुरु और ईश्वर दोनों एक समान है.

माया दीपक नर पतँग, भ्रमि भ्रमि इवै पड़ंत .

कहै कबीर गुर ग्यान थैं, एक आध उबरन्त ..

कबीर दीपक और पतंग की उपमा द्वारा समझाना चाहते है कि माया दीपक के समान है. दीपक जब जलता है तो पतंगा भ्रमवश बार-बार उस पर गिर पड़ता है और जलकर मर जाता है. यह पतंगा हमारा जीव है. इस पूरी प्रक्रिया को देखें तो कोई एकाध पतंगा ही बच पाता है. यहाँ कबीर इस उपमा से अलग हटकर उपदेश देते हैं कि गुरु के ज्ञान से कोई एकाध जीव ही बच पाता है. इसका अर्थ यह भी है कि ज्ञान से मुक्ति मिलती है. ज्ञान का अर्थ है अपने अस्तित्व का ज्ञान. यह सत्य है. सत्य यह है कि परमात्मा ही सत्य है. जीव उस परमात्मा का अंश है. कोई भी जीव अपनी प्रवृत्ति से माया की तरफ ही आगे बढ़ता है. उसे अपनी प्रवृत्ति से हटाकर परमात्मा की तरफ प्रवृत होना चाहिए. यह प्रक्रिया गुरु के ज्ञान और मार्ग दर्शन से ही सम्भव है.

ईश्वर – परमात्मा को कबीर 'राम' नाम से सम्बोधित करते हैं. उसका न कोई आकार है, न रूप है. वह इस जगत से परे है. जब यह धरती, गगन, पवन और पानी कुछ भी नहीं था, तब 'हरि' थे.

धरती, गगन, पवन नहीं होता, नहीं तोया, नहीं तारा .

तब हरि हरि के जन होते, कहै कबीर बिचारा ..

(सं. रामकिशोर शर्मा, *कबीर ग्रन्थावली*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 158)

यह ईश्वर कैसा है? कबीर के राम पुराणों में वर्णित दशरथ पुत्र राम नहीं हैं . उनका कहना है कि जो राम को दशरथ पुत्र समझते हैं, वे राम नाम के मर्म को ही नहीं जानते. तब ईश्वर क्या है इस प्रश्न के उत्तर में कबीर कहते हैं कि यदि मैं राम को भारी कहूँ तो डर लगता है और यदि उस हल्का कहूँ तो यह झूठ होगा. मुझे क्या पता राम का, मैंने तो अपनी आँखों से कभी उसे देखा ही नहीं. यह राम तो अद्‌भूत है.

दीठा है तो कस कहूँ, कह्या न को पतियाइ .

हरि जैसा है तैसा रहौ, नूँ हरषि हरषि गुण गाइ ..

(वही, पृ. 171)

वह तो दुनिया के मानदण्डों से परे है. जब वह ऐसा है तो उसका कोई मन्दिर नहीं है, उसका कोई आकार नहीं है. और तब प्रचलित धर्म साधना सब मिथ्या है और जिसे कबीर कहते हैं कि यह सब माया का प्रसार है.

इस दार्शनिक समझ के आधार पर वे जाति-पाति की व्यवस्था का खण्डन करते हैं और धार्मिक आडम्बरों का विरोध करते हैं."

4.3.1. अद्वैत दर्शन का प्रभाव

कबीर के यहाँ ब्रह्म, जीव और माया की भूमिका अद्वैतवादी दर्शन को समेटे हुए है. उनकी रचनाओं में मौजूद निरूपाधि निर्गुण ब्रह्म-सत्ता का स्वरूप अद्वैत और वेदान्त दर्शन से आया है. कबीर ईश्वर का स्वरूप बताते हुए लिखते हैं कि –

पण्डित मिथ्या करहु बिचारा . ना वह सृष्टि, न सिरजनहारा .

जोति सरूप काल नहिं उहँवाँ . बचन न आहि सरीरा ॥

थूल अथूल पवन नहिं पावक . रवि ससि धारनि न नीरा ॥

पण्डितो, तुम गलत सोचते हो. वह सृष्टि या उसे रचने वाला नहीं है. वहाँ ज्योति स्वरूप या काल नहीं है. न उसका कोई शरीर है, न ही वह कुछ कहता है. वहाँ स्थूल या अस्थूल, हवा या आग, सूर्य या चन्द्र, धरती या जल कुछ भी नहीं है. कबीर का यह निर्गुण ईश्वर है. अद्वैतवादियों की तरह कबीर मानते हैं की माया ने दुनिया को त्रिगुण फाँस में फँसा रखा है. इस अविद्या माया से मुक्ति, विद्या माया के सहारे ही मिल सकती है. अविद्या माया से मुक्ति के बाद मनुष्य को विद्या माया की भी आवश्यकता नहीं रहती है. तब वह परब्रह्म में लीन हो जाता है. कबीर माया के फँदे को काटकर मुक्त होने का जिक्र करते हुए लिखते हैं –

कबीर माया पापणीं, फंध ले बैठि हाटि.

सब जग तो फंधै पड़्या, गया कबीरा काटि ..

कबीर की रचनाओं पर अद्वैत एवं वेदान्त दर्शन के प्रभाव को ब्रह्म, माया आदि के स्वरूप को पहचानने और ब्रह्म को पाने की प्रक्रिया के रूप में रेखांकित किया जाता है साथ ही उन्हें उपनिषदों और वेदों के उल्लेख एवं उनसे मिलते-जुलते विचारों के जरिए भी पहचाना जा सकता है. उपनिषद् में वर्णित ब्रह्मविद्या के बारे में कबीर ने कहा है कि –

तत्त्वमसी इनके उपदेसा. ई उपनीषद कहैं सन्देसा ..

जागबलिक औ जनक संबादा. दत्तात्रेय वहै रस स्वादा ..

उपनिषदों और वेदों का सीधा उल्लेख कबीर पर इनसे सम्बबन्धित अद्वैतवाद आदि दर्शनों के प्रभाव की ओर संकेत करता है. इसके साथ ही कबीर की रचनाओं में इन दर्शनों के अनेक सूत्र सिद्धान्त भी

अन्तर्निहित हैं, जो इस प्रभाव की गहराई की ओर संकेत करते हैं. उनकी रचनाओं पर वेदान्त के सैद्धान्तिक प्रभाव को रेखांकित करते हुए आचार्य शुक्ल लिखते हैं – वेदान्तियों के कनक कुण्डल न्याय आदि का व्यवहार भी इनके वचनों में मिलता है –

गहना एक कनक तें गहना, इन महँ भाव न दूजा.

कहन सुनन को दुइ करि थापिन, इक निमाज, इक पूजा॥

4.3.2. वैष्णव दर्शन का प्रभाव

कबीर की कविता में दया, करुणा, स्नेह की प्रधानता तथा हिंसा का नकार जिस रूप में आया है वह अहिंसावाद का प्रभाव जान पड़ता है. यह अहिंसावाद वैष्णव दर्शनों से आया हुआ प्रतीत होता है. कबीर ने अपनी रचनाओं में जीव हिंसा की कड़ी निन्दा की है. वे लिखते हैं –

दिन भर रोजा रहत हैं, राति हनत हैं गाय .

यह तो खून वह बन्दगी, कैसे खुसी खुदाय ॥

दिन में इन्द्रियों पर नियंत्रण रखकर इबादत के लिए रोजा रखने वाले, यदि रात को गाय मारें, तो भला खुदा को खून बहाने वाली बन्दगी से कैसे खुशी मिल सकती है?

अपनी देखि करत नहिं अहमक, कहत हमारे बड़न किया .

उसका खून तुम्हारी गरदन, जिन तुमको उपदेश दिया ॥

अपने हिंसक कर्मों का औचित्य परम्परा के आधार पर ठहराने वालों को अहमक नाम से सम्बोधित करते हुए कबीर कहते हैं कि ये अहमक अपने कर्मों पर स्वयं विचार नहीं करते हैं और कहते हैं कि हमारे बड़ों ने ऐसा ही किया है. वे पूछते हैं कि तुमने जो खून किया है, उसका भार तुम्हारी गरदन पर है, या उनकी गरदन पर जिन्होंने तुमको उपदेश दिया है?

बकरी पाती खाति है ताको काढ़ी खाल .

जो नर बकरी खात हैं तिनका कौन हवाल ॥

घास खाने वाली बकरी को मारकर खाने, या उसकी खाल निकालने वालों को यह सोचना चाहिए कि जो बकरी खाते हैं, उनकी इसी हिसाब से क्या गति हो सकती है?

कबीर की रचनाओं में ईश्वर के निर्गुण रूप के अलावा सर्वव्यापी रूप की झलक भी मिलती है. वैष्णव दर्शनों की तरह उनका ईश्वर सर्वशक्ति सम्पन्न है. वे सृष्टि में हर रूप में विद्यमान हैं. वे *आपुहि देवा आपुहि पाती . आपुहि कुल आपुहि है जाती ॥*

सृष्टि के सभी जीव में उसी का अंश है – 'साईं के सब जीव हैं कीरी कुंजर दोय.' अर्थात छोटी कीरी से लेकर विशाल कुंजर तक सब उस ईश्वर के ही जीव हैं. रामचन्द्र शुक्ल अद्वैतवाद एवं वैष्णववाद के प्रभाव को रामानन्द के जरिए आया हुआ मानते हैं. उन्होंने लिखा है कि कबीर में ज्ञानमार्ग की जहाँ तक बातें हैं वे सब हिन्दू शास्त्रों की हैं, जिनका संचय उन्होंने रामानन्द जी के उपदेशों से किया. माया, जीव, ब्रह्म, तत्त्वमसि, आठ मैथुन (अष्टमैथुन), त्रिकुटी, छह रिपु इत्यादि शब्दों का परिचय उन्हें अध्ययन द्वारा नहीं, सत्संग द्वारा ही हुआ….

4.3.3 सूफी दर्शन का प्रभाव

कबीर ने ईश्वर की आराधना के लिए जो प्रेम का मार्ग चुना है, वह सूफी दर्शन से प्रभावित है. ईश्वर को प्रिय मानकर, स्वयं को उनकी प्रिया के रूप में देखना, यद्यपि भारतीय रहस्यवाद की भी विशेषता है; किन्तु कबीर के यहाँ प्रेम एवं विरह की कारुणिकता और मिलन का उद्दाम चित्र जिस तन्मयता से मिलता है, वह सूफी दर्शन के प्रभाव से आया हुआ प्रतीत होता है. कबीर का समय सूफी दर्शन के उत्थान का दौर है. ऐसे में हर दृष्टि से बेहतर का चुनाव करने वाले कबीर का सूफी दर्शन से प्रभावित होना स्वाभाविक है. उन्हें गुरु की कृपा से ब्रह्म का बोध होता है, तो वे स्त्री रूप धरकर माँ से पूछते हैं कि –

वे दिन कब आवेंगें माई .

जाहि कारण हम देह धरिहौं मिलिबौ कब अंग लगाई ॥

प्रेम में थोड़ा और डूबने पर वे सीधे अपने प्रिय (बाल्ह) को ही अपने घर व्यग्रता पूर्वक बुलाते हुए पूछते है –

बाल्हा आव हमारे गेहु रे, तुम्ह बिन दुखिया देह रे ..टेक..

सब को कहै तुम्हारी नारी, मोको इहै अंदेह रे .

एकमेक ह्वै सेज न सोवै, तब लग कैसा नेह रे ..

विरह बोध इस कदर बढ़ता है कि वह अपना सर्वस्व होम कर प्रिय की करुणा पाने की आस लगाती है –

यहु तन जालौं मसि करूँ, ज्यूँ धूवाँ जाइ सरग्गि,

मति वै राम दया करै, बरसि बुझावै अग्गि ..

आखिरकार राम को दया आती है और प्रिया प्रिय का मिलन हो जाता है.

जोग जुगति सुरंग महल में पिय पाई अनमोल रे .

4.3.4. हठयोग और शून्य दर्शन का प्रभाव

कबीर की रचनाओं में सिद्धों और नाथों की साधनात्मक शब्दावली का प्रचुर प्रयोग किया गया है. कुण्डलिनी जागरण, षटचक्र भेदन, सहस्रार में ब्रह्म का साक्षात्कार, इला, पिंगला, सुषुम्ना आदि का प्रयोग हठयोग दर्शन के प्रभाव से आया है. इस प्रभाव और इसकी सीमाओं को रेखांकित करते हुए रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं – "जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कबीर के लिए नाथपन्थी जोगी बहुत कुछ रास्ता निकाल चुके थे. भेदभाव को निर्दिष्ट करने वाले उपासना के बाहरी विधानों को अलग रखकर उन्होंने अन्तस्साधना पर जोर दिया था. पर नाथपन्थियों की अन्तस्साधना हृदयपक्षशून्य थी, उसमें प्रेम-तत्त्व का अभाव था. कबीर ने यद्यपि नाथपन्थ की बहुत-सी बातों को अपनी बानी में जगह दी, पर यह बात उन्हें खटकी."

कबीर ने हठयोगियों द्वारा प्रयुक्त, चन्द, सूर, नाद, बिन्दु, अमृत, औंधा कुआँ जैसी, साधनात्मक रहस्यवाद की सांकेतिक शब्दावली का प्रयोग कर चमत्कारपूर्ण रचनाएँ की हैं.

सूर समाना चन्द में दहूँ किया घर एक .

मन का चिन्ता तब भया कछू पुरबिला लेख ॥

आकासे मुखि औंधा कुआँ पाताले पनिहारि .

ताका पाणी को हंसा पीवै बिरला आदि बिचारि ॥

सिद्धों और नाथों के दर्शन के साथ शून्य-दर्शन का प्रभाव भी कबीर की कविता में स्पष्ट लक्षित होता है. उनकी कविता में ब्रह्म के शून्य होने का एवं उस स्वरूप में जीव के साक्षात्कार का अनेक बार उल्लेख मिलता है. इसे शून्यवाद के प्रभाव से आया हुआ समझना चाहिए. शून्यवाद बौद्ध दर्शन है जिसका प्रभाव सिद्धों की रचनाओं में भी मिलता है. बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन की दृष्टि में मूल-तत्त्व शून्य के अतिरिक्त अन्य

कुछ नहीं है. ध्यान देने की बात यह है कि यह शून्य कोई निषेधात्मक वस्तु नहीं है, जिसे छिपाया जा सके. किसी भी पदार्थ का स्वरूप निर्णय करने में चार ही कोटियों का प्रयोग सम्भाव्य है – अस्ति (विद्यमान है), नास्ति (विद्यमान नहीं है), तदुभयम् (एक साथ ही अस्ति नास्ति दोनों) तथा नोभयम् (अस्ति नास्ति दोनों कल्पनाओं का निषेध). परम-तत्त्व इन चारों कोटियों से मुक्त होता है और इसीलिए उसके अभिज्ञान के लिए 'शून्य' शब्द का प्रयोग किया गया है. कबीर के यहाँ परम-तत्त्व के शून्य रूप का जिक्र कई रूपों में आया है.

पाँणी ही ते हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाई .

जो कुछ था सोई भया, कछू कह्या न जाइ ॥

(*कबीर ग्रन्थावली*, श्यामसुन्दर दास, प्रस्तावना, लोकभारती प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, 2011, पृ. 58)

इस शून्य को ध्यान साधना के जरिए पाया जाता है. जब तत्त्व से साक्षात्कार हो जाता है तब शून्य में डूबकर आत्मा की तपन मिट जाती है, और वह शीतल हो जाती है.

तत पाया तन बीसरया, जब मुनि धरिया ध्यान .

तपनि गई सीतल भया, जब सुनि किया असनान ..

कबीर पर विभिन्न दर्शनों का प्रभाव पहचानते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि कबीर ने किसी भी दर्शन को हू-ब-हू नहीं अपनाया. इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने अनुभव सत्य को अपनी कविता में अभिव्यक्ति देकर अपना दर्शन विकसित किया. वे ईश्वर को रहस्यवादियों की तरह बुद्धि के बजाय सहज ज्ञान से बोधगम्य तो मानते हैं, किन्तु वे यह भी कहते हैं कि इस सहज का वास्तविक अभिप्राय लोग समझते नहीं हैं –

सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्हैं कोइ .

जिन्ह सहजै हरिजी मिलै, सहज कहीजै सोइ ..

उन्होंने सहज को एक दर्शन का रूप देकर, उसे सबसे अच्छा बताया है. इस सहज समाधि में व्यक्ति जो कहता है वही नामस्मरण है, जो करता है वही पूजा हो जाता है. इसलिए किसी दर्शन को कबीर पर आरोपित करने के बजाय उसे मात्र प्रभावित करने वाले कारक के रूप में देखना चाहिए. कबीर ने ईश्वर को

जिस रूप में देखा है, वह दर्शनों के अतिरिक्त रहस्यवाद की पद्धति के बहुत निकट है. आगे हम कबीर की कविता और रहस्यवाद के सम्बन्ध को समझने की कोशिश करेंगें.

4.4 कबीर की रहस्य भावना

बुद्धि और ज्ञान की शक्ति से परे किसी परम रहस्यमयी सत्ता की संकल्पना कर उसकी प्रतीति करने की प्रक्रिया रहस्यवाद कहलाती है. *'कबीर ग्रन्थावली'* की भूमिका में रहस्यवाद का परिचय देते हुए श्यामसुन्दर दास ने लिखा कि – "चिन्तन के क्षेत्र का ब्रह्मवाद कविता के क्षेत्र में जाकर कल्पना और भावुकता का आधार पाकर रहस्यवाद का रूप पकड़ता है."(*कबीर ग्रन्थावली*, श्यामसुन्दर दास, लोकभारती प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, 2011, पृ. 39) साहित्यकोश में इसे परिभाषित करते हुए लिखा गया कि "अपनी अन्तःस्फुरित अपरोक्ष अनुभूति द्वारा सत्य, परम-तत्त्व अथवा ईश्वर का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करने की प्रवृत्ति रहस्यवाद है." रामचन्द्र शुक्ल ने रहस्यवाद को काव्य-वस्तु से जोड़कर देखा है. उनके अनुसार कविता में रहस्यवाद वह दशा है 'जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है.'*(हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, 2005, पृ. 468)* कबीर के रहस्यवाद का अध्ययन करने वाले डॉ. रामकुमार वर्मा के विचार से "रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है, जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है और यह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता है." (*कबीर का रहस्यवाद*, रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन, इलाहाबाद,1966, पृ. 7) उन्होंने रहस्यवाद की तीन स्थितियाँ बताई हैं –

1. **जिज्ञासा** – यह रहस्यवाद की पहली अवस्था है. इसके अन्तर्गत वे स्थितियाँ शामिल की जाती हैं जिनमें आत्मा, परमात्मा के विषय में सुनकर उससे सम्बन्ध जोड़ने के लिए अग्रसर होती है.

2. **प्रयत्न** – यह रहस्यवाद की दूसरी अवस्था है जिसमें आत्मा, परमात्मा से प्रेम करती है और उससे मिलने की कोशिश करती है.

3. **मिलन** – यह अन्तिम अवस्था है जिसमें आत्मा और परमात्मा एकाकार हो जाते हैं. (*कबीर का रहस्यवाद*, रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन, इलाहाबाद,1966, पृ. 12-14)

कबीर ने ईश्वर के स्वरूप को अद्वैत रूप में ग्रहण किया. इस ईश्वर को उन्होंने जिस रूप में प्रकट किया वह रहस्यवाद की प्रक्रिया थी. रहस्यवाद मानता है कि बुद्धि की सारी दौड़-भाग कर लेने के बाद भी परम-तत्त्व में रहस्य का एक हिस्सा छूट जाता है. इस हिस्से में बुद्धि नहीं पहुँच सकती है. इसे केवल अन्तःस्फुरित सहज ज्ञान द्वारा जाना जा सकता है. यह ज्ञान अंतःस्फुरित अपरोक्ष अनुभूति की शक्ति द्वारा ही हो सकता है. वह इस शक्ति को विकसित और सक्षम करने के लिए अनेक साधन करता है. रहस्यवादी परम सत् का बोध कराने में बुद्धि के असामर्थ्य को मानता है, लेकिन वह बुद्धि, संकल्प और भावनात्मक पक्षों का विरोधी नहीं होता है. उसके सीमित महत्त्व को स्वीकार करने के कारण वह उसका बहिष्कार नहीं करता है.

कबीर की कविता में रहस्यवाद की उक्त सभी विशेषताएँ मौजूद हैं. शुक्ल जी कबीर की कविता में मौजूद रहस्यवाद को दो कोटियों में बाँटते हैं: साधनात्मक रहस्यवाद और भावनात्मक रहस्यवाद. वे कहते हैं कि कबीर में सूफियों के भावात्मक रहस्यवाद और हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद, दोनों की अभिव्यंजना है.(*हिन्दी साहित्य का इतिहास*, रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, 2005, पृ. 72) यह विभाजन परम सत् तक पहुँचने की प्रक्रिया और मिलन के स्वरूप में अन्तर के आधार पर किया गया है. जब उस परम सत् का बोध करने के लिए कबीर यौगिक साधनाओं का मार्ग अपनाते हैं, तब वे साधनात्मक रहस्यवाद रच रहे होते हैं. जब वे परम सत्ता को प्रिय मानते हैं तथा स्वयं उसकी प्रेमिका बनकर प्रेमाकांक्षा और विरह व्यथा के जरिए उन्हें पाने की चेष्टा करते हैं, तो वे भावात्मक रहस्यवाद रच रहे होते हैं. साधनात्मक रहस्यवाद में कुण्डलिनी सहस्रार चक्र में पहुँचकर ब्रह्म से साक्षात्कार की अनुभूति पाती है. भावात्मक रहस्यवाद में प्रेमिका का प्रेमी से मिलन हो जाता है और दोनों रति क्रीड़ा में निमग्न हो जाते हैं.

कहना न होगा कि कबीर की रचनाओं में अपनी अनुभूति द्वारा ईश्वर की जिज्ञासा, संकल्पना, तलाश और उसके साक्षात्कार का बारम्बार जिक्र मिलता है.

लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल .

लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल ॥

साधक के लिए सबसे दीर्घ प्रक्रिया ईश्वर के तलाश की होती है. भावात्मक रहस्यवाद में कबीर ने इस अनूभूति को करुण विरह के सहारे व्यक्त किया है. परम सत् को जान लेने के बाद उससे मिलने के लिए आत्मा तड़पती है. मगर वह न तो उस तक पहुँच पाती है न ही उसे बुला पाती है.

आइ न सकौ तुझ पै, सकूँ न तुझ बुलाइ .

जिय शयौ ही ले हुंगे, विरह तपाइ तपाई ..

आखिरकार साधक की साधना पूरी होती है. प्रेमी को प्रेमिका के विरह व्यथा पर दया आती है, और दोनों का मिलन हो जाता है. कबीर के यहाँ मिलन के बहुतेरे चित्र मिलते हैं.

(क) 'कहै कबीर व्याहि चले हैं पुरुष एक अविनासी .'

(ख) 'सखी सुहाग राम मोहिं दीन्हा ॥'

(*कबीर ग्रन्थावली*, श्यामसुन्दर दास, लोकभारती प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, 2011, पृ. 39)

मिलन कबीर की कविता के माधुर्य भाव की चरम परिणति है. वह अनेक रूपों में चित्रित हुआ है. कबीर ने विवाह से लेकर सुहागरात और मिलन तक के तमाम लौकिक प्रतीकों के जरिए अपने भावात्मक रहस्यवादी अनुभूतियों को व्यक्त किया है.

दुलहनी गावहु मंगलचार,

हम घरि आए हो राजा राम भरतार ॥टेक॥

तन रत करि मैं मन रत करिहूँ, पंचतत्त बराती .

रामदेव मोरैं पाँहुनैं आए मैं जोबन मैं माती ॥

सरीर सरोवर बेदी करिहूँ, ब्रह्मा बेद उचार .

रामदेव संगि भाँवरी लैहूँ, धंनि धंनि भाग हमार ॥

सुर तैतीसूँ कौतिग आये, मुनिवर सहस अठ्यासी .

कहै कबीर हँम ब्याहि चले हैं, पुरुष एक अविनासी ॥

(कबीर ग्रन्थावली, लोकभारती प्रकाशन, श्यामसुन्दर दास, द्वितीय संस्करण, 2011, पृ. 116)

कबीर के काव्य में साधनात्मक रहस्य की अनुभूति भी अनेक पदों में दर्ज हुई है. इन पर सिद्धों-नाथों की साधना पद्धति का प्रभाव दिखाई पड़ता है. परम सत् का बोध होने के बाद कबीर आत्मा को जागते रहने की नसीहत देते हैं.

मन रे जागत रहिये भाई.

गाफिल होइ बसत मति खोवै, चोर मूसै घर जाई ॥टेक॥

षट चक की कनक कोठड़ी, बस्त भाव है सोई .

ताला कूँजी कुलफ के लागे, उघड़त बार न होई ॥

पंच पहरवा सोइ गये हैं, बसतै जागण लोगी .

करत बिचार मनहीं मन उपजी, नाँ कहीं गया न आया .

कहै कबीर संसा सब छूटा, राम रतन धन पाया ॥

(कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दर दास,लोकभारती प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, 2011, पृ. 123*)*

संसार के छूटने के बाद मन में ईश्वर की अनुभूति होती है. फिर कहीं आए गए बिना ही राम से मिलन हो जाता है. रहस्यवादी साधक विकारों से स्वयं को सुरक्षित रखने की कोशिश करता है. वह जीवन रूपी चादर को ज्यों का त्यों वापस धर देने का प्रयत्न करता है. सिद्धों की साधना पद्धति के प्रभाव वाली रचनाओं में पाताल में पड़ी हुई कुण्डलिनी यौगिक क्रियाओं से जाग्रत होकर ऊपर की ओर उठती है. इस तरह वह निरन्तर कठिन साधना के बल पर सहस्रार चक्र में पहुँच जाती है. वहाँ उसे अनहद नाद सुनाई पड़ता है. वह अमृत वर्षा में सराबोर हो जाती है. उसका परब्रह्म से साक्षात्कार हो जाता है. आत्मा-परमात्मा दोनों मिल जाते हैं.

4.5. सारबिंदु

कबीर की कविता अद्वैतवाद, शून्यवाद, सूफीवाद दर्शनों में से बहुत कुछ को अपनाकर रची गई है. कबीर को वैष्णव, सिद्ध, नाथ और सूफी मतों में जो कुछ ग्राह्य लगा, उन्होंने अपनी कविता के दर्शन में शामिल कर लिया. विरोधी लगने वाले दर्शनों को अपनाकर कबीर ने जिस तरह अपने दर्शन रचे हैं, वे सहजता, बोधगम्यता और माधुर्य के कारण बहुत लोकप्रिय हुए हैं. ईश्वर के स्वरूप को जानने, उससे मिलने की कोशिश करने और फिर मिलन की अनुभूतियों को उन्होंने जिस रूप में व्यक्त किया है, वह रहस्यवादी पद्धति है. उनके रहस्यवाद में अनुभूति का प्राधान्य है. उन्होंने जिज्ञासा, माधुर्य भावना, विरह-मिलन तथा अद्वैतभाव आदि का चित्रण पूरे मनोयोग से किया है. इनमें दार्शनिकता का भी पुट मिलता है, उनके साधनात्मक रहस्यवाद की तुलना में भावात्मक रहस्यवाद अपने माधुर्य भाव की तीव्रता के कारण ज्यादा प्रभावी और लोकप्रिय हुआ है.

4.6 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दीजिए :

1) कबीर पर किन दर्शनों का विशेष प्रभाव पड़ा था? सविस्तार चर्चा कीजिए.
2) कबीर की रहस्य भावना को समझाइये.

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :

1) कबीर के राम
2) कबीर की दृष्टि में 'माया' और 'ईश्वर'
3) कबीर पर हठयोग और शून्य दर्शन का प्रभाव
4) रहस्यवाद की तीन स्थितियाँ

निम्नलिखित वाक्यों के सही अथवा गलत होने का निर्णय कीजिए :

1) कबीर का काव्य उनके जीवन-दर्शन से भरा हुआ है.
2) कबीर की कविता में ब्रह्म, जीव, जगत और माया के माध्यम से उनके दार्शनिक चिन्तन का परिचय मिलता है.
3) परमात्मा को कबीर 'दशरथपुत्र राम' के रूप में मानते हैं.
4) रहस्यवाद की तीन स्थितियाँ बताई गयीं हैं – जिज्ञासा, प्रयत्न और मिलन.
5) कुण्डलिनी सहस्रार चक्र में पहुँचकर ब्रह्म से साक्षात्कार की अनुभूति पाती है.

निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

1) कबीर ने दर्शन के सन्दर्भ में तत्त्वतः _______ को सत्य माना है.
2) कबीर ने ईश्वर के स्वरूप को _________ रूप में ग्रहण किया.
3) _______और _________ के विवेक ने कबीर की कविता को अनेक दर्शनों का सार बना दिया है.
4) कबीर का ___________ उनके जीवन से प्राप्त अनुभव था.
5) कबीर ने ईश्वर की आराधना के लिए जो प्रेम का मार्ग चुना है, वह _______ दर्शन से प्रभावित है.

4.7 उपयोगी पाठ्यसामग्री

पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य कोश भाग-1, धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल,वाराणसी

2. हिन्दी साहित्य कोश भाग-2, धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल,वाराणसी

3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,नागरी प्रचारणी सभा,वाराणसी

4. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

5. कबीर ग्रन्थावली, रामकिशोर शर्मा(सं.), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

6. कबीर का रहस्यवाद, रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन, इलाहाबाद

7. कबीर-साहित्य की परख, परशुराम चतुर्वेदी, भारती भण्डार, इलाहाबाद

8. कबीर : एक अनुशीलन, रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन, इलाहाबाद

9. कबीर, विजयेन्द्र स्नातक(संपा.),राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

10. कबीर ग्रन्थावली, सम्पादक – डॉ. श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी,

11. कबीर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

12. कबीर की सखियाँ, संकलन वियोगी हरि, भारतीय साहित्य संग्रह

13. कबीर पदावली, रामकुमार वर्मा,हिन्दी साहित्य सम्मलेन,प्रयाग

वेब लिंक्स

1. http://www.sahityakunj.net/LEKHAK/V/VirendraSinghYadav/kabir_ke_raam_banaam_nirgun_Alekh.htm

2. http://bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%85%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%B5%E0%A5%88%E0%A4%A4%E0%A4%B5%E0%A4%BE%E0%A4%A6

3. http://gadyakosh.org/gk/%E0%A4%A8%E0%A4%BF%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%97%E0%A5%81%E0%A4%A3_%E0%A4%A7%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A4%BE:_%E0%A4%9C%E0%A5%8D%E0%A4%9E%E0%A4%BE%E0%A4%A8%E0%A4%BE%E0%A4%B6%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%

A4%AF%E0%A5%80_%E0%A4%B6%E0%A4%BE%E0%A4%96%E0%A4%BE_/_%E0%A4%AD%E0%A4%95%E0%A5%8D%E0%A4%A4%E0%A4%BF%E0%A4%95%E0%A4%BE%E0%A4%B2_/_%E0%A4%B6%E0%A5%81%E0%A4%95%E0%A5%8D%E0%A4%B2

4. https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%AC%E0%A5%80%E0%A4%9C%E0%A4%95

5. https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B8%E0%A4%82%E0%A4%A4%E0%A4%B8%E0%A4%BE%E0%A4%B9%E0%A4%BF%E0%A4%A4%E0%A5%8D%E0%A4%AF

6. https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%95%E0%A4%AC%E0%A5%80%E0%A4%B0

7. http://bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%95%E0%A4%AC%E0%A5%80%E0%A4%B0_%E0%A4%95%E0%A4%BE_%E0%A4%9C%E0%A5%80%E0%A4%B5%E0%A4%A8_%E0%A4%AA%E0%A4%B0%E0%A4%BF%E0%A4%9A%E0%A4%AF

8. http://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%95%E0%A4%AC%E0%A5%80%E0%A4%B0

9. https://www.youtube.com/watch?v=44M6yyIxJYk

10. https://www.youtube.com/watch?v=WEWbl-YbowU

इकाई 5 कबीर की सामाजिक विचारधारा

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 समाज-सुधारक कबीर

5.4 कवि के रूप में कबीर

5.4.1. कवि कबीर : परोक्ष स्वीकृति

5.4.2. कबीर का कवि व्यक्तित्व

5.5 सारबिंदु

5.6 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

5.7 उपयोगी पाठ्यसामग्री

5.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त आप –

- कबीर के कवि रूप को जान सकेंगे.
- कबीर के समाज-सुधारक रूप से परिचित हो सकेंगे.
- विभिन्न आलोचकों की कबीर–सम्बन्धी मतों की तुलना कर सकेंगे.
- कबीर की रचनाओं के मूल्यांकन की विभिन्न पद्धतियाँ समझ सकेंगे.

5.2 प्रस्तावना

भक्तिकाल के कवियों ने मुख्यतः स्वान्तःसुखाय रचना की. कबीर उसी धारा के महत्त्वपूर्ण कवि हैं. उनकी कविताई एवं समाज-सुधार दोनों का भारतीय जन-मानस पर गहरा प्रभाव पड़ा. हिन्दी आलोचना में उनके दोनों रूपों को लेकर बहस होती रही है. यद्यपि उन्होंने समाज-सुधारक होने की कोई घोषणा नहीं की, पर उनकी रचनाओं में कवित्व और समाज-सुधार दोनों का समावेश मिलता है. तो सवाल है कि कबीर की पहचान किस रूप में की जाए? हिन्दी के आलोचकों ने कबीर का मूल्यांकन किस रूप में किया? कबीर के कवि होने, या समाज-सुधारक होने के विवाद का तर्क क्या है? कवि या समाज-सुधारक के रूप में उनकी रचनाओं को पढ़े जाने का अन्तर क्या है? उनके दोनों रूपों का पारस्परिक सम्बन्ध क्या है? क्या इन्हें एक-

दूसरे से पृथक देखा जा सकता है? इन प्रश्नों के सहारे हम कबीर की रचनाओं में मौजूद काव्यत्त्व और सामाजिक सरोकारों से अवगत हो सकेंगे. उनके साहित्यिक महत्त्व से परिचित हो सकेंगे, सामाजिक महत्त्व समझ सकेंगे. इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर 'कबीर की सामाजिक विचारधारा : कवि बनाम समाज-सुधारक' विषय को इस पाठ में शामिल किया गया है.

5.3 समाज-सुधारक कबीर

चित्तवृत्तियों के विरेचन तथा समाजहित में अपने अनुभव और श्रुति परम्परा से ग्रहण किए गए ज्ञान का प्रसार ही भक्तिकाल के सन्तों का काव्य प्रयोजन होता था. कबीर की कविता में यह ज्ञान समाज-सुधार के तत्त्वों के साथ सामने आया. वे राज सत्ता और धर्म सत्ता के भय से मुक्त होकर अपने समय के समाज-सत्य को वाणी दे रहे थे. जिस समाज में धर्म और जाति के नाम पर भेदभाव किया जाता हो, वहाँ काव्य का प्रमुख प्रयोजन, विद्रूपों पर प्रहार (शिवेतरक्षतये) ही हो सकता है. कबीर के समय में उत्तर भारत में दो धार्मिक अस्मिताएँ, हिन्दू और मुसलमान थीं. दोनों में अपने-अपने आचार-विचार, रीति-रिवाज, सामाजिक तथा धार्मिक मान्यताओं के सन्दर्भ में कट्टरता विद्यमान थीं. दोनों परस्पर द्वेष और वैमनस्य रखते थे समझौते के लिए कोई तैयार न था. ऐसे परिवेश में कबीर ने हिन्दू और मुस्लिम दोनों समुदायों की आलोचना की. उन्होंने धर्म के आडम्बर और तर्कहीनता को उजागर किया. उन्होंने न केवल सामाजिक स्थिति में निहित विद्रूपता को उजागर किया, बल्कि उसके सुधार के लिए सचेत प्रयास भी किया. उनकी रचनाओं में धर्म और जाति सम्बन्धी मूल्यों, मानवता-विरोधी रुढ़ियों पर निरन्तर तर्क किया गया है. उसमें धार्मिक अन्धविश्वासों, अतार्किक रीति-रिवाजों, कर्म और श्रम विरोधी मूल्यों के स्तर पर समाज को दुरुस्त करने की कोशिश मिलती है. समाज सुधार के लिए हिन्दू, मुसलमान दोनों कबीर की कविता से अपना स्वर बुलंद करते हैं. आरम्भिक आलोचकों ने इसी कबीर को समाज-सुधारक, धर्म प्रवर्तक, उपदेशक, आदि रूपों में चिन्हित किया. मध्यकालीन सन्तों, टीकाकारों, भक्तों से लेकर वर्तमान आलोचकों तक ने कबीर के वैचारिक सरोकारों को प्रमुखता से रेखांकित किया.

5.4 कवि के रूप में कबीर

भक्तिकाल में जायसी के अलावा किसी भी रचनाकार ने स्वयं को कवि के रूप में याद रखे जाने की कामना नहीं. कबीर ने भी अपनी वाणियों को कविता या गीत न कहकर 'ब्रह्म विचार' कहा, जिनमें उनके आध्यात्मिक साधना (आतम साधन) का सार समझाया गया है.

तुम जिनि जानौं गीत है, यहु निज ब्रह्म–विचार. / केवल कहि समझाइया, आतम साधन सार रे॥

तुलसी और सूर की तरह उनकी प्राथमिकता भी भक्ति ही थी, किन्तु यह उनके कवित्व में बाधक नहीं बनी है. उन्होंने अपने जीवन जगत के अनुभवों को शब्दों में इस तरह पिरोया कि वह श्रेष्ठ कविता बन गई. किन्तु हिन्दी आलोचना में देर तक कबीर के कवि रूप की पहचान समाज सुधारक या धर्म-संस्थापक के वर्चस्वशाली रूप के आगे फीकी पड़ी रही. कबीर का सांसारिक अनुभव बेहद अटपटा और खरा था. इस अटपटे संसार को प्रकट करने के लिए उन्होंने सिद्धों-नाथों की शैली को विकसित कर कविता की नई शैली को जन्म दिया, जिसे उलटबाँसियाँ (एक अचम्भा देख्या रे भाई / ठाढ़ा स्यंघ चरावै गाई.) कहा गया. इसके अतिरिक्त उनकी कविता की भाषा कोई एक मानक बोली न होकर अनेक बोलियों के मिश्रण से बनी है. इसे बहुत से आलोचकों ने कविता विरोधी माना और कबीर के काव्य के प्रभाव को स्वीकार करते हुए भी उसमें काव्यत्व के अभाव की घोषणा की. इस तरह से कबीर के काव्य की आलोचना करने वालों की दो श्रेणियाँ बनीं. एक श्रेणी में वे आलोचक शामिल हैं जिन्होंने कबीर के समाज-सुधारक, धर्म-प्रवर्तक आदि रूपों को प्रधान माना है तथा कबीर के कवि रूप को भी रेखांकित किया है. दूसरी श्रेणी में वे आलोचक हैं, जिन्होंने कबीर को प्राथमिक रूप से कवि के रूप में पहचाने जाने पर बल दिया है.

5.4.1. कवि कबीर : परोक्ष स्वीकृति

मध्यकालीन संग्रहकारों, परिचयकारों और टीकाकारों के समान ही आरम्भिक हिन्दी आलोचना में कबीर का कवि रूप उल्लेखनीय है. कबीर के कविता की प्रभा अपनी चमक से निरन्तर आलोचकों को चौंधियाती रही. आलोचकों ने उनके कवि रूप को प्रधान न मानकर वक्तृत्व शैली, काव्य प्रतिभा, प्रतीक योजना आदि की सराहना की. वस्तुतः वे इस तरह कबीर के कवि रूप की ही विशेषताएं रेखांकित कर रहे थे. *कबीर ग्रन्थावली* के सम्पादक श्यामसुंदर दास ने कबीर की भक्ति और भावुकता को कवित्व से ऊपर रखा, और इसका कारण उनकी अटपटी वाणी बताई. (भूमिका, *कबीर ग्रन्थावली*, सम्पादक -डॉ.

श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1928, पृ. 4) लेकिन उन्होंने कबीर में काव्य हेतु के प्राथमिक घटक 'प्रतिभा' की पहचान भी की और उलटबाँसियों में इसकी चरम परिणति देखी. कबीर के कवि-रूप का बखान करते हुए उन्होंने लिखा –

"प्रयत्न उनकी कविता में कहीं नहीं दिखाई देता. अर्थ की जटिलता के लिए उनकी उलटबाँसियाँ केशव की शब्द माया को मात करती है; परन्तु उनमें भी प्रयत्न दृष्टिगत नहीं होता. रात दिन आँखों में आनेवाले प्रकृति के सामान्य व्यापारों के उलट व्यवहार को ही उन्होंने सामने रखा है. सत्य के प्रकाश का साधन बनकर, जिसकी प्रगाढ़ अनुभूति उनको हुई थी, कविता स्वयमेव उनकी जिह्वा पर आ बैठी है. (भूमिका, *कबीर ग्रन्थावली*, सम्पादक – डॉ. श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1928, पृ. 46)

वस्तुतः यह कबीर की कविता की सहजता को रेखांकित करने वाला कथन है. इसी सहजता ने कबीर को आम लोगों का कवि बनाया है. रामचन्द्र शुक्ल ने निम्न वर्ग के लोगों के उत्थान में निभाई गई कबीर की भूमिका को रेखांकित किया तो कबीर का कवि रूप भी साथ चला आया. आचार्य शुक्ल ने लिखा कि "यद्यपि वे पढ़े लिखे न थे, पर उनकी प्रतिभा बड़ी प्रखर थी, जिससे उनके मुँह से बड़ी चुटीली और व्यंग्य चमत्कारपूर्ण बातें निकलती थीं. इनकी उक्तियों में विरोध और असम्भव का चमत्कार लोगों को बहुत आकर्षित करता था, जैसे –

है कोई गुरुज्ञानी जगत महँ उलटि बेद बूझै.

पानी महँ पावक बरै, अन्धाहि आँखिन्ह सूझै

गाय तो नाहर को धारि खायो, हरिना खायो चीता.

अथवा

नैया बिच नदिया डूबति जाय.

अनेक प्रकार के रूपकों और अन्योक्तियों द्वारा ही इन्होंने ज्ञान की बातें कही हैं जो नई न होने पर भी वाग्वैचित्र्य के कारण अपढ़ लोगों को चकित किया करती थीं."

कबीर अपढ़ लोगों के कवि हैं, इस बड़ी विशेषता की अपनी शिष्ट दृष्टि की सीमाओं के कारण, आचार्य शुक्ल प्रशंसा नहीं कर सके. कबीर सामान्य जन की संवेदना से भली-भाँति परिचित थे. जनसामान्य से सम-व्यथा का भाव ही कबीर के काव्य का निकष है. उनमें संवेदना गहरे स्तर तक पगी हुई है. उनकी

संवेदना से आत्मीयता के साथ वे ही लोग जुड़े जिनमें पीड़ा का भाव था. परशुराम चतुर्वेदी ने इसी कारण कबीर के काव्य को जनकाव्य माना "सन्त काव्य की लोकप्रियता उनके काव्य-तत्त्व की प्रचुरता पर निर्भर नहीं. वह जन साधारण के अंग बने कवियों (व क्रान्तदर्शी व्यक्तियों) की स्वानुभूति की यथार्थ अभिव्यक्ति है और उसकी भाषा जन साधारण की भाषा है. उसमें साधारण जन सुलभ प्रतीकों के प्रयोग हैं और वह जन जीवन को स्पर्श करता है. वही सभी प्रकार से जनकाव्य कहलाने योग्य है." (बड़थ्वाल, पीताम्बर दत्त, *हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय*, अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ, वि.सं. 2000, पृ. 19) चतुर्वेदी ने भी कबीर में काव्य-तत्त्व की प्रचुरता का अभाव माना और उन्हें जनकवि कहकर इन सीमाओं से ऊपर बताया.

कबीर के द्वारा कहे गए 'निज ब्रह्म विचार' को शब्द-प्रमाण मानकर अध्ययन किया जाए तो उनके कवि रूप पर रीझकर भी आंशिक परिचय स्वाभाविक है. 'निज ब्रह्म विचार' को ही कबीर का काव्य-सत्य मानने का परिणाम हुआ कि हजारीप्रसाद द्विवेदी उनकी कविताई पर मुग्ध तो हुए किन्तु उसे 'घलुए की वस्तु' कह दिया. काव्य-सत्य पर व्यक्ति-सत्य को वरीयता देते हुए द्विवेदी ने कहा कि "मस्ती, फक्कड़ाना स्वभाव और सब कुछ को झाड़ फटकारकर चल देने वाले तेज ने कबीर को हिन्दी साहित्य का अद्वितीय व्यक्ति बना दिया है. उनकी वाणियों में सब कुछ को छोड़कर उनका सर्वजयी व्यक्तित्व विराजता रहता है. उसी ने कबीर की वाणियों में अनन्य साधारण जीवन रस भर दिया है. कबीर की वाणी का अनुकरण नहीं हो सकता. अनुकरण करने की सभी चेष्टाएँ व्यर्थ सिद्ध हुई हैं. इसी व्यक्तित्व के कारण कबीर की उक्तियाँ श्रोता को बलपूर्वक आकृष्ट करती हैं. इसी व्यक्तित्व के आकर्षण को सहृदय आलोचक सँभाल नहीं पाता और रीझकर कबीर को 'कवि' कहने में सन्तोष पाता है. ऐसे आकर्षक वक्ता को 'कवि' न कहा जाए तो और क्या कहा जाए? परन्तु यह भूल नहीं जाना चाहिए कि यह कवि-रूप घलुए में मिली हुई वस्तु है. कबीर ने कविता लिखने की प्रतिज्ञा करके अपनी बातें नहीं कहीं थीं. उनकी छन्द-योजना, उक्ति वैचित्र्य और अलंकार विधान पूर्ण रूप से स्वाभाविक और अयत्नसाधित हैं. काव्यगत रूढ़ियों के न तो वे जानकार थे और न कायल." (द्विवेदी, हजारीप्रसाद, *कबीर*, राजकमल पेपरबैक्स, 2005, पृ. 170-71)

कबीर की कविता अद्वितीय, सहज और प्रभावशाली है. कायल न होने के कारण यदि उन्होंने परम्परागत काव्यरूढ़ियों से कविता को दूर रखा है तो फिर उन्हें कवि न मानने का तर्क बहुत ठीक नहीं लगता है. कबीर का सम्पूर्ण व्यक्तित्व उनकी कविता में घुल मिलकर एकाकार हो चुका है. जहाँ एक तरफ

जात-पाँत का निषेध है, दूसरी तरफ धार्मिक आडम्बर का भी नकार है. धर्मसत्ता ने जो विचारहीन आस्था निर्मित की, कबीर ने उसको अस्वीकार कर दिया. अस्वीकार का यह साहस कबीर के व्यक्तित्व के साथ उनकी कविता की भी थाती है. तभी तो उनकी कविता का स्वर इतना तीखा बन पड़ा कि आलोचकों को वह कविता के बाहर की चीज लगती है. कबीर के सम्बन्ध में पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल की मान्यता बिल्कुल स्पष्ट है कि "उनके पद्यों में केवल कुछ ही ऐसे हैं जो अच्छी कविता के अन्तर्गत आ सकते हैं और जिनमें प्रदर्शित चित्र भी सुन्दर हैं. शेष या तो उपदेशात्मक उद्गार हैं अथवा योग एवं वेदान्त के विविध सिद्धान्तों के रूपकों द्वारा व्यक्त किए गए अंश हैं. इस प्रकार के काव्यों को हम काव्य की दृष्टि से रूपात्मक नहीं कह सकते."(बड़थ्वाल, पीताम्बर दत्त, *हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय*, अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ, 2000, पृ. 36)

कबीर ने काव्य को अपना माध्यम काव्य के लिए नहीं; सामाजिक अनुभव, सत्य एवं ज्ञान के निरूपण के लिए बनाया. यही कारण है कि उन्होंने जो कुछ कहा उसमें अनुभूति की गहनता के साथ अनुभव की प्रामाणिकता भी है. उनके काव्य में कला-पक्ष भले शिथिल हो किन्तु भाव-पक्ष कहीं अधिक उन्नत है. बीसवीं सदी में कबीर का कवि रूप ज्यादातर परोक्ष रूप से स्वीकृति पाता रहा. अन्तिम दौर में जरूर उन्हें प्राथमिक रूप से कवि के रूप में देखे जाने के तर्क का विकास शुरू हुआ.

5.4.2. कबीर का कवि व्यक्तित्व

कबीर को कवि रूप में प्राथमिकता देने तथा उनकी कविताई पर व्यवस्थित अध्ययन करने वाले आलोचक लिण्डा हेस महत्त्वपूर्ण हैं. लिण्डा हेस ने कबीर को कवि और मूलगामी सुधारक माना. हेस के अनुसार समाज केवल बाह्यतम परत थी, जिसको कबीर ने सुधारने की कामना की. वे सवाल करती हैं कि आखिर क्यों उनकी अटपटी कविता इतनी वेधक और स्मरणीय बन पड़ी? यह सवाल कबीर की शैली के अध्ययन को इंगित करता है. ("Kabir was a poet, and a radical reformer, though society was only the outmost skin of what he wished to reform. What makes his rough verses so strong and memorable? The question points to a study of style." -Hess, Linda, *The Bijak of Kabir*, Ed. Hess, Linda & Singh, Shukdev, Motilal Banarasidas, 2002, pp. 7-8) हेस के अनुसार कबीर अपने साथी भक्त कवियों (सूर, तुलसी व मीराँ आदि) से इसलिए

अलग हैं, क्योंकि जहाँ उनकी कविताएँ प्राथमिक रूप से ईश्वर को सम्बोधित थीं वहीं कबीर बुनियादी तौर पर हमसे मुखातिब हैं. (Stylistically this factor was most clearly distinguishes Kabir from his famous colleagues Sur, Tulsi and Mira; they are primarily addressing to god; he is primarily addressing us." -Hess, Linda, *The Bijak of Kabir*, Ed. Hess, Linda & Singh, Shukdev, Motilal Banarasidas, 2002, pp. 9)

मान्य तथ्य है कि पाठ आधारित आलोचना ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होती है. कबीर के बारे में कोई भी राय कबीर की रचनाओं के जरिए कायम की जानी चाहिए. कबीर के यहाँ प्रेम की अनन्यता के बेहद मधुर पद हैं जो उन्हें श्रेष्ठ कवि की पंक्ति में शुमार करते हैं. यह हिन्दी आलोचना का परिष्कार है कि कबीर के सुधारक, व्यंग्यकार रूपों को पार कर समालोचक उनकी कविताई को प्राथमिक मानने को उद्यमशील हुए हैं.

कबीर के विचारों, संघर्षों और मान्यताओं को यदि थोड़ी देर के लिए अलग कर दें तो भी हम उनके कवि रूप को पहचान सकते हैं. कबीर कहते हैं और मानते हैं कि यह संसार माया है. आपसी रिश्ते झूठे हैं. माता-पिता भाई-बहन कुछ भी सही नहीं है. सब अकेले आते हैं और अकेले जाते हैं. तब प्रश्न उठता है और 'दादूदयाल' पर विचार करते हुए डॉ. रामबक्ष ने उठाया कि 'तब निर्गुण भक्त कवियों ने दूसरे मनुष्यों को इतना उपदेश क्यों दिया? वे क्यों चाहते थे कि सांसारिक मनुष्य ज्ञान प्राप्त करके 'सत्य' का साक्षात्कार करे? चूँकि वह संसार के अन्य मनुष्यों से प्यार करते थे, अतः उन्होंने उनको सुधारने-सँवारने के लिए ज्ञान का प्रचार किया.' (रामबक्ष, *दादूदयाल,* साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, पृ. 36)

यदि हम इस दृष्टि से देखें तो कबीर की डाँट-फटकार में उनका प्रेम, उनका दर्द दिखाई देता है. कबीर झुंझलाकर कहते है कि तुम ऐसा क्यों कर रहे हो? ऐसा क्यों नहीं करते? जो सही है, वह तुम्हें दिखाई नहीं देता. उन्हें देखो आगे गड्ढा है, गिर पड़ोगे. कबीर जानते थे. कबीर के पाठक नहीं जानते. उन पाठकों के हित में उन्हें फटकार रहे हैं. यह फटकार उनके प्रेम से आई हैं.

कबीर सूता क्या करै, काहे न देखै जागि .

जाका संग तै बीछुड्या, ताही के संग लागि ..

कबीर की भाषा अत्यन्त अर्थ गर्भित है. अब यह सोना सिर्फ जैविक क्रिया नहीं है. यह अज्ञान का सोना है. निष्क्रियता का सोना है. इस एक शब्द के अर्थ-विस्तार से पूरी साखी के अर्थ का विस्तार हो जाता है. कविता यही तो करती है. शब्द के अर्थ का विस्तार करती है. कवि और पाठक के बीच नया रिश्ता बनाती है. और इस कार्य में कबीर बहुत प्रभावशाली है.

कबीर जब किसी नादान-नासमझ व्यक्ति को सम्बोधित करते हैं, तब उनका स्वर, उनकी भाव-भंगिमा और उनकी भाषा करुणा में भीगी हुई होती है. भले ही ऊपर से वे डाँट-फटकार करते हुए दिखाई देते है. जब कबीर ऐसे लोगों को सम्बोधित करते हैं जो दूसरों को गुमराह कर रहे हैं, तब उनकी भाषा उग्र और ह्रदय में क्रोध होता है. तिरस्कार होता है. अवमानना होती है. जब वे कहते हैं 'जिनि कलमाँ कलि माँहि पठावा' या कहते हैं, 'पण्डित भूले पढ़ि गुन्य बेदा', तब उनमें क्रोध की भावना आती है. यहाँ कबीर पंजा लड़ाने के लिए तर्क करते हैं और तर्क से परास्त कर देंगे, यह विश्वास उनकी कविता में है.

यह अलग बात है कि ऐसे पद उनकी कविताओं में बहुत कम है. कबीर की अधिकांश साखिया और पद सन्तों को सम्बोधित है जिनमें वे अपना अनुभव साझा करते हैं, जीवन को निरीक्षण और निरीक्षण के निष्कर्ष बताते हैं. यह हमें कबीर की विचारशीलता का एहसास कराता है. इस विचारशीलता से कबीर कितने गहरे जुड़े हुए हैं इसका एहसास होता है. इन्हीं में कबीर का व्यक्तित्व अभिव्यक्त होता है, जिसका विश्लेषण आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने किया है. यदि कबीर सिर्फ उपदेश देते रहते, तथ्य कथन करते रहते तो उनका व्यक्तित्व अभिव्यक्त नहीं होता. कवि का व्यक्तित्व उनके सर्जन में अभिव्यक्त होता है. अपने अनुभव का वे साक्ष्य देते हैं. यही उनकी कविता की जान है.

कविता यदि भाव व्यापार है तो कबीर की कविताओं में उनके भावों की अभिव्यक्ति हुई है. हालांकि उनके सारे भाव विचारों में गूंथे हुए आते है. ऊपर-ऊपर से देखने पर हमें कबीर के विचार दिखाई देते है, परन्तु उन विचारों की पृष्ठभूमि में उनकी उत्कट भाव सम्वेदना सक्रिय रहती है.

5.5 सारबिंदु

कबीर हिन्दी के उन गिने-चुने कवियों में हैं जिनकी रचना अपने सामाजिक सरोकारों की वजह से लोकप्रिय और चर्चित है. कबीर की सामाजिक विचारधारा वंचितों के लिए बेहद आकर्षक और सम्भ्रान्तों के लिए उतनी ही विकर्षक है. परिणामस्वरुप दोनों दृष्टियों से कबीर की सामाजिक विचारधारा को रेखांकित करने योग्य मानी गई. उनका कवि रूप भी साथ साथ सामने आया, किन्तु बेहद क्षीण रूप में. बीसवीं सदी

के उत्तरार्ध तक हिन्दी आलोचना कबीर को समाज-सुधारक या क्रान्तिकारी परिवर्तन की कामना करने वाले विचारक के रूप में देखती रही. इधर पाठ आधारित आलोचना पर बल दिया गया और कबीर को प्राथमिक रूप से कवि के रूप में पहचाने जाने का उद्यम दिखने लगा है.

5.6 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दीजिए :

1) समाज सुधारक के रूप में कबीर का वर्णन कीजिए.
2) कवि कबीर की विशेषताएँ बताइए.

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :

1) कबीर का कवि व्यक्तित्व
2) कबीर के कवि रूप की परोक्ष स्वीकृति
3) कबीर की विचारशीलता
4) कबीर की कविता का उद्देश्य

निम्नलिखित वाक्यों के सही अथवा गलत होने का निर्णय कीजिए :

1) भक्तिकाल के कवियों ने मुख्यतः स्वान्तःसुखाय रचना की है.
2) कबीर ने धर्म के आडम्बर और तर्कहीनता को उजागर किया.
3) वर्तमान आलोचकों ने कबीर के वैचारिक सरोकारों को प्रमुखता से रेखांकित नहीं किया है.
4) कबीर ने अपनी वाणियों को कविता या गीत न कहकर 'ब्रह्म विचार' कहा है.
5) कबीर की कविता की भाषा कोई एक मानक बोली न होकर अनेक बोलियों के मिश्रण से बनी है.

निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

1) कबीर ग्रन्थावली के सम्पादक ____________ने कबीर की भक्ति और भावुकता को कवित्व से ऊपर रखा है.
2) _____________ ने कबीर के काव्य को जनकाव्य माना है.
3) कबीर ने जो कुछ कहा उसमें ________ की गहनता के साथ _________ की प्रामाणिकता भी है.
4) __________ ने कबीर को कवि और मूलगामी सुधारक माना.
5) "एक अजूबा देखा रे भाई। ठाड़ा _________ चरावे गाई॥"

5.7 उपयोगी पाठ्यसामग्री

पुस्तकें

1. *कबीर ग्रन्थावली*, सम्पादक – डॉ. श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी,

2. *हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय*, पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ,

3. *कबीर*, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

4. रामबक्ष, *दादूदयाल,* साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

5. *हिन्दी साहित्य कोश भाग-1*,धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल,वाराणसी

6. *हिन्दी साहित्य कोश भाग-2*,धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल,वाराणसी

7. *हिन्दी साहित्य का इतिहास*,आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,नागरी प्रचारणी सभा,वाराणसी

8. *हिन्दी साहित्य का उदभव और विकास*,हजारी प्रसाद द्विवेदी,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

9. *हिन्दी साहित्य की भूमिका,* हजारी प्रसाद द्विवेदी,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

10. *कबीर की सखियाँ,* संकलन वियोगी हरि, भारतीय साहित्य संग्रह

वेब लिंक्स

1. https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B8%E0%A4%82%E0%A4%A4%E0%A4%B8%E0%A4%BE%E0%A4%B9%E0%A4%BF%E0%A4%A4%E0%A5%8D%E0%A4%AF

2. https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%95%E0%A4%AC%E0%A5%80%E0%A4%B0

3. http://bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%95%E0%A4%AC%E0%A5%80%E0%A4%B0_%E0%A4%95%E0%A4%BE_%E0%A4%9C%E0%A5%80%E0

%A4%B5%E0%A4%A8_%E0%A4%AA%E0%A4%B0%E0%A4%BF%E0%A4%9A%E0%A4%AF

4. http://bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%95%E0%A4%AC%E0%A5%80%E0%A4%B0

5. http://www.bharatdarshan.co.nz/magazine/literature/226/kabir-ke-dohe.html

6. http://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%95%E0%A4%AC%E0%A5%80%E0%A4%B0

7. https://www.youtube.com/watch?v=44M6yyIxJYk

8. https://www.youtube.com/watch?v=WEWbl-YbowU

इकाई 6 कबीर : सामाजिक विद्रोह

इकाई की रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 कबीर के सामाजिक प्रतिरोध और विद्रोह का स्वरूप

6.3.1 जाति और वर्ण भेद का प्रतिरोध

6.3.2 साम्प्रदायिक भेदभाव का प्रतिरोध

6.3.3 सामाजिक विवेकहीनता का प्रतिरोध

6.4 कबीर की प्रतिरोधी और विद्रोही भावना का सामाजिक आधार

6.4.1 जातिगत आधार

6.4.2 धार्मिक आधार

6.4.3 लैंगिक आधार

6.5 सारबिंदु

6.6 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

6.7 उपयोगी पाठ्यसामग्री

6.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त आप –

- कबीर की कविता के सामाजिक सरोकारों को समझ सकेंगे.
- कबीर की विद्रोह भावना का स्वरूप जान सकेंगे.
- कबीर काव्य में मौजूद सामाजिक प्रतिरोध की भावना से परिचित हो सकेंगे.
- कबीर एवं निर्गुण भक्तिधारा के सामाजिक आधारों की पड़ताल कर सकेंगे.
- कबीर की कविता के सामाजिक महत्त्व का मूल्यांकन कर सकेंगे.

6.2 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य में कबीर के काव्य की गणना सर्वश्रेष्ठ काव्यों में की जाती है. इसका कारण कबीर काव्य के सामाजिक सरोकारों में निहित है. बहुत से आलोचकों की दृष्टि में उनकी कविता सबसे अधिक

आधुनिक लगती है. कबीर को सबसे अधिक प्रासंगिक उनकी कविता में मौजूद विद्रोह की भावना बनाती है. इस भावना ने कबीर की कविता में प्रतिरोध के स्वर की रचना की है. ऐसे में प्रतिरोध और विद्रोह के स्वरूप और उनके विविध आयामों को समझना आवश्यक है. कबीर की कविता समाज में किस तरह के परिवर्तन की आकांक्षा लेकर आई थी? और इस आकांक्षा ने भक्तिकालीन साहित्य को किस कदर प्रभावित किया है? इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर इस पाठ्यचर्चा में 'कबीर : सामाजिक प्रतिरोध और विद्रोह' को शामिल किया गया है.

6.3 कबीर के सामाजिक प्रतिरोध और विद्रोह का स्वरूप

भक्तिकालीन साहित्य में कबीर की कविता अपनी अलग पहचान रखती है. इसका प्रमुख कारण उसमें मौजूद प्रतिरोध का स्वर है. इस स्वर को जन्म देने वाली विद्रोह-भावना कबीर को तुलसी आदि सगुण भक्त कवियों से अधिक आधुनिक बनाती है. रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर आदि निर्गुण सन्तों को सूर तुलसी आदि सगुण एवं जायसी आदि सूफी कवियों की तुलना में सबसे कम महत्व दिया है. लेकिन कबीर की कविता में तीक्ष्ण व्यंग्य के साथ मौजूद विद्रोह और प्रतिरोध के स्वर को उन्होंने भी रेखांकित किया है. हिन्दी साहित्य के इतिहास में कबीर का परिचय देते हुए वे लिखते हैं कि उपासना के बाह्य स्वरूप पर आग्रह करने वाले और कर्म काण्ड को प्रधानता देने वाले पण्डितों और मुल्लों – दोनों को उन्होंने खरी-खरी सुनाई और रामरहीम की एकता समझा कर हृदय को शुद्ध और प्रेममय करने का उपदेश दिया. देशाचार और उपासना विधि के कारण मनुष्य-मनुष्य में जो भेदभाव उत्पन्न हो जाता है, उसे दूर करने का प्रयास उनकी वाणी बराबर करती रही. यद्यपि वे पढ़े-लिखे न थे, पर उनकी प्रतिभा बड़ी प्रखर थी, जिससे उनके मुँह से बड़ी चुटीली और व्यंग्य चमत्कारपूर्ण बातें निकलती थीं. कबीर ब्राह्मणों और मुल्लाओं पर इसलिए चोटें कर रहे थे क्योंकि ये ईश्वर और मनुष्य के बीच धार्मिक कर्मकांडों और अंधविश्वासों की दीवार खरी कर अपना उल्लू सीधा करते थे. जबकि कबीर का लक्ष्य एक बेहतर समाज की स्थापना करना था. इसलिए आवश्यक था कि समाज के एक बड़े तबके को निम्न श्रेणी में धकेलने वाली पण्डिताई, कर्मकाण्ड, अन्धविश्वास, पाखण्ड आदि का प्रतिरोध किया जाए. इस प्रतिरोध को दबाने की कोशिशें होनी ही थी. समाज के शक्तिसम्पन्न वर्ग की ओर से कबीर पर अत्याचार शुरू हुए. कबीर के प्रतिरोध ने विद्रोह का रूप धारण किया. कबीर ने अपना सब कुछ दाँव पर लगाकर अपनी विरोधी विचारधारा को चुनौती दी. इस विद्रोही तेवर ने उनके प्रतिरोध और प्रेम – दोनों भाव की कविता को अपूर्व ओज से भर दिया. वे सर्वस्व उत्सर्ग करने की क्षमता को बनाते हुए अपने जैसा विद्रोही होने की सलाह देते हैं –

कबीरा खड़ा बजार में लिए लुकाठी हाथ।

जो घर जारे आपना सो चले हमारे साथ॥

विद्रोही तेवर ने कबीर के प्रेम के सर्वस्व उत्सर्ग की माँग को भी वीर-दर्प से युक्त कर दिया है –

कबीर यह घर प्रेम का खाला का घर नाहीं.

शीश उतारे भुई धरे सो पैठे एही माँही॥

कबीर जिस एक ईश्वर के लिए एकान्तिक प्रेम और सम्पूर्ण समर्पण की माँग कर रहे थे, उस दुनिया में मनुष्य में भेदभाव बरतने की गुंजाइश नहीं हो सकती थी. इसलिए उन्होंने जाति और धर्म के आधार पर किए गए सामाजिक विभाजन का डटकर विरोध किया. उन्होंने हिंसा, क्रूरता और अन्याय के विभिन्न रूपों की आलोचना की. वे समाज को सामाजिक और धार्मिक भेद से, रूढ़ियों और अन्धविश्वासों से, निरर्थक आडम्बर और कर्मकाण्डों से मुक्त करना चाहते थे. उन्होंने जनता को शोषण और अन्याय न करने, न सहने और उसका मुकाबला करने की प्रेरणा दी . कबीर के प्रतिरोध और विद्रोह के इन्हीं आयामों को समझने की कोशिश की गई है.

6.3.1. जाति और वर्ण भेद का प्रतिरोध

कबीर की कविताओं में विद्रोह और प्रतिरोध का जो स्वर मिलता है. उसको उनके दर्शन से प्राण वायु मिलती थी. यह कहना मुश्किल है कि कबीर अपने दर्शन के कारण भेदभाव का विरोध करते हैं या भेदभाव की अनुभूति के कारण इस दर्शन की शरण में जाते हैं. सभी निर्गुण कवियों के समान कबीर कुछ मूलभूत बातों को स्थापित करते हैं –

(i) ब्राह्मण श्रेष्ठ नहीं है, वरन् सभी मनुष्य एक समान है.

(ii) वेद प्रमाण नहीं है वरन् अनुभव प्रमाण है.

वे अपने तर्कों, विचारों और उद्धरणों के द्वारा इन दोनों मान्यताओं को स्थापित करते हैं. इनको स्थापित करने के लिए वे तर्क देते हैं. बहस करते हैं. चुनौती देते हैं –

जे तू बाँभन बभनी जाया, तो आँन द्वार ह्वै काहे न आया.

यदि तू ब्राह्मण हो (अर्थात् श्रेष्ठ हो). ब्राह्मण इसलिए है क्योंकि तुम्हें ब्राह्मणी ने जन्म दिया है. यदि तू श्रेष्ठ है तो इस संसार में किसी दूसरे मार्ग से क्यों नहीं आया. उसी मार्ग से, उसी तरह तुम्हारा जन्म क्यों

हुआ? आसमान से बरसात के साथ बरस जाना. यदि इस मूलभूत बात में तुम सभी अन्य मनुष्यों के समान हो तो इसी समानता को स्वीकार कर लो. कबीर यहीं तक तर्क नहीं देते. इस मत के समर्थन में वे आम जीवन के अनुभवों के अनेक उदाहरण देते है, जिनमें ब्राह्मण श्रेष्ठता की भावना का खण्डन होता है. मध्यकालीन समाज में जाति-व्यवस्था बहुत ताकतवर थी. समाज का एक बड़ा हिस्सा निम्न श्रेणी में धकेल दिया गया था. उन्हें समानता और सम्मान से; शिक्षाशास्त्र और धार्मिक संस्कारों की विरासत से वंचित कर दिया गया था. कबीर ने विद्रोह किया. उन्होंने अपनी प्रखर वाणी द्वारा जाति और वर्ण की इस व्यवस्था से जाति या वर्ण के आधार पर मनुष्य को ऊँचा और नीचा मानने का प्रतिवाद किया. ब्राह्मण स्वयं को ब्रह्मा के मुख से पैदा होने के कारण श्रेष्ठ बताते थे.

कबीर की राय में सभी मनुष्यों का शरीर एक समान है;उत्तम, अधम अवयवों से युक्त है; सभी एक ही ज्योति से पैदा हुए हैं; फिर कोई ब्राह्मण और कोई शूद्र कैसे हो सकता है?

एक बूँद एके मल मूतर, एक चाँम एक गूदा .

एक जोति थैं सब उतपनों कौन बरुन कौन सूदा.. (पद-156)

इस तरह कबीर जन्म के आधार पर मनुष्य की समानता स्थापित करते हैं. वे ऊँच-नीच जाति मानने और छूआछूत बरतने को अनुचित बताते हैं. इसके लिए उन्होंने ब्राह्मणों की आलोचना की है –

काहे को कीजै पाण्डे छूत विचार.

छूतही ते उपजा सब संसार..

कबीर के यहाँ बौद्धों, सिद्धों आदि की जाति और वर्ण भेद सम्बन्धी प्रतिरोध की वाणी को भी नया आधार मिला. इस प्रतिरोध की वाणी को भी नया आधार मिला. इस प्रतिरोध का प्रसार और प्रभाव दूर और देर तक हुआ. उनके पीछे जाति और वर्ण आधारित भेद का विरोध करने वाले सन्तों का एक वर्ग विकसित हुआ. रैदास, रज्जब, दादू, पीपा, नानक आदि सन्तों ने अपने तईं कबीर के प्रतिरोध को आगे बढ़ाया. कबीर के प्रतिरोध का महत्त्व इस बात से भी उजागर होता है कि भारत में निम्न सामाजिक स्थिति पर धकेले जाने का प्रतिरोध करने वाले दलित आन्दोलनों ने सबसे अधिक कबीर को अपनाया है. डॉ. धर्मवीर सहित अनेक दलित आलोचकों को कबीर सर्वाधिक अपने लगते हैं. कबीर के प्रतिरोध और विद्रोही तेवर ने उन्हें दलित जाति में आत्मविश्वास, गौरव और उच्च भावों का संचार करने वाले कवि के रूप में स्थापित कर दिया है.

6.3.2 साम्प्रदायिक भेदभाव का प्रतिरोध

कबीर धार्मिक व्यक्ति थे. भक्त थे. भगवान की सत्ता में विश्वास करते थे. उनके अनुसार भगवान निर्गुण है. निराकार है. जो लोग कबीर के इस मत से सहमत थे, वे कबीर के अपने लोग थे. वे सन्त थे. उनसे कोई बहस नहीं थी. परन्तु जो लोग ईश्वर के सगुण रूप को मानते थे. कबीर उनके सभी क्रियाकलापों का खण्डन करते हैं. ये वे सब बातें है जिन्हें आज हम अन्धविश्वास, रुढ़ियाँ, धार्मिक आडम्बर कहते हैं. कबीर इन सबका खण्डन करते हैं. ऐसा वे गैर धार्मिक व्यक्ति के रूप में नहीं करते, वरन् एक सच्चे धार्मिक व्यक्ति के रूप में करते हैं. मध्यकाल में जाति के साथ धर्म के आधार पर भेद करने वाली बहुस्तरीय सामाजिक व्यवस्था ने भी मनुष्य को जकड़ रखा था. कबीर ने धार्मिक भेद से, रूढ़ियों और अन्धविश्वासों से, निरर्थक आडम्बर और कर्मकाण्डों से मुक्ति के लिए अपना विद्रोही स्वर बुलन्द किया. उन्होंने धर्म के ठेकेदारों पर जमकर चोटें की. अकारण ही लोक-कण्ठ में बसी जनश्रुतियाँ मुल्लाओं और पण्डितों को कबीर के प्रतिपक्ष में नहीं दिखातीं. धार्मिक भेदभाव, अन्धविश्वास और रूढ़ियों का विरोध करने वाली कबीर की वाणी कट्टरपन्थी हिन्दुओं और मुसलमानों को तिलमिला देती है. कबीर अपनी आलोचना में भी धर्मभेद नहीं करते. वे हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्म की आलोचना कई बार एक ही पद, और कई बार एक ही पंक्ति में साथ-साथ करते हैं. उन्हें हिन्दू और इस्लाम दोनों एक समान प्रिय या अप्रिय हैं. वे प्रेम और निन्दा दोनों में हिन्दू मुसलमान में भेद नहीं करते. दोनों धर्मों को खरी खरी सुनाने वाला कबीर का एक पद इस तरह है –

अरे इन दोउन राह न पाइ.

हिन्दू अपनी करै बड़ाई, गागर छुवन न देई.

वेश्या के पायन तर सोवैं, यह देखी हिन्दुवाई.

मुसलमान के पीर औलिया, मुरगा-मुरगी खाई.

खाला केरी बेटी ब्याहैं घरहि में करैं सगाई.

हिन्दुन की हिन्दुवाई देखी तुरकन की तुरकाई.

कहै कबीर सुनौ भाई साधौ, कौन राह है जाई.

भक्तिकालीन समाज में हिन्दू और इस्लाम दो मुख्य धर्म थे. कबीर कहते हैं कि दो में से किसी को सही रास्ता नहीं मिला. हिन्दू छूत मानते हैं, पर वेश्यागामी भी हैं. मुसलमानों के धर्मगुरु ही जीव हिंसा करने वाले और निकट सम्बन्धियों से शादी करने वाले हैं. कबीर ने दोनों धर्मों के आडम्बर, अन्धविश्वास, कर्मकाण्ड, कुरीति और अनाचार का बिना भेद किए समान भाव से प्रतिरोध किया है. कबीर ने हिन्दुओं की मूर्तिपूजा का बराबर विरोध किया है. इस विरोध के अनेक तर्क उन्होंने प्रस्तुत किये है.

पत्थर पूजने से यदि ईश्वर मिल सकता है, तो मैं पहाड़ को ही क्यों न पूज लूँ? घर में पत्थर की ही बनी हुई चक्की को क्यों नहीं पूजते हैं? मूर्तिपूजा पर किए गए ऐसे कटाक्षों में भी एक तर्क है. इसी तर्क से कबीर ने व्यंग्य शैली में मुसलमानों द्वारा अल्लाह को प्रसन्न करने के लिए अजान देने और जीव हिंसा करने पर कटाक्ष किया है. उन्होंने पूछा कि कंकड़ पत्थर जोड़ कर मस्जिद बनाते हो. उस पर चढ़कर नियत समय पर अल्लाह को मुर्गे की तरह बांग देकर बुलाते हो. क्या खुदा बहरा हो गया है?

काँकर पाथर जोरिके, मस्जिद लियो बनाय.

ता पर मुल्ला बाँग दे, बहरो हुआ खुदाय..

कबीर ने हिन्दू और इस्लाम दोनों धर्मों की एक ही पद में आलोचना करके उनमें एकता स्थापित करने का मार्ग बनाया. समानता का यह स्वरुप अत्यन्त तार्किक और स्वीकार्य था. इसलिए उनके यहाँ हिन्दू और मुसलमान प्रायः साथ-साथ आते हैं. अलग-अलग पदों और एक ही पद में दोनों धर्मों की आलोचना गौरतलब हैं. इस सूक्ष्म विश्लेषण को एक ही पंक्ति में दोनों धर्मों के समावेशन में देखा जा सकता हैं –

हिन्दू कहें मोहि राम पियारा, तुर्क कहें रहमाना,

आपस में दोउ लड़ी-लड़ी मुए, मरम न कोउ जाना.

हिन्दू को राम और तुर्क (मुसलमान) को रहीम प्यारा है. दोनों आपस में लड़कर मर रहे हैं, लेकिन मर्म कोई नहीं समझ सके. यह मर्म (सारतत्व) राम, रहीम के ऐक्य में है. इसलिए दो नाम सुनकर किसी को भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए.

राम–रहीमा एक है, नाम धराया दोय.

कहै कबीरा दो नाम सुनि, भरम परौ मति कोय..

कबीर समाज में भेद पैदा करने वाले तत्त्वों का स्पष्ट उल्लेख करते हैं. उन्होंने कहा कि राम, रहीम की एकता को पापियों (बदमाशों) ने दो बना दिया है. इस जन-विरोधी भेद-नीति से धर्म-सत्ता और राज-सत्ता लाभ उठाती है. इसलिए वे पण्डितों और मौलवियों के खिलाफ प्रतिरोध का स्वर रचते हैं. इस विद्रोही चेतना ने कबीर को आज के समय के लिए बेहद जरूरी कवि बना दिया है. मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं कि – "इधर जब से साम्प्रदायिकता की महामारी फैली है, और मस्जिद-मन्दिर का झगड़ा खड़ा हुआ है, तब से कबीरदास का महत्त्व साधारण जनता के साथ-साथ विद्वानों की भी समझ में आने लगा है. कबीर ऐसे कवि हैं जिन्हें किसी तरह की साम्प्रदायिकता और कट्टरता न तो अपना बना सकती है और न पचा सकती है." कबीर धार्मिक विभाजन करने वाले तत्त्वों के मार्ग के लिए अपाच्य तो हैं ही, उनके मार्ग के अटल अवरोधक भी हैं. यह एकता भी निर्गुण की स्वीकृति पर हो सकती है.

6.3.3 सामाजिक विवेकहीनता का प्रतिरोध

कबीर ने जाति और धर्म से जुड़ी तर्कहीन मान्यताओं का प्रतिरोध कर समानतापरक समाज के निर्माण का स्वप्न देखा था. अन्धविश्वास और रूढ़ियाँ उनके रास्ते के बड़े काँटे थे. ये काँटे सगुण मत की उपज थे जो अवतारवाद, मूर्तिपूजा और वर्ण व्यवस्था का समर्थन करता था. सगुण मत ने धार्मिक ही नहीं सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों में भी अनेक कर्मकाण्डों और कुरीतियों को जन्म दे दिया था. ये कुरीतियाँ और कर्मकाण्ड तर्कहीन होकर भी प्रचलित थे. ये प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सामाजिक विषमता के पोषक थे. निर्गुण सन्तों ने विवेक की कसौटी पर खरा न उतरने वाले सारी सामाजिक परम्पराओं, रूढ़ियों, रीति-रिवाजों, विश्वासों, मान्यताओं आदि का प्रतिरोध किया. जाति, धर्म और राजसत्ता मध्ययुगीन समाज में सबसे अधिक प्रभावी सामाजिक अभिकरण थे. ऐसे में सामाजिक दुर्दशा की जिम्मेदारी भी इन्हीं की थी. कबीर ने इनकी अतार्किकता और शोषक-चरित्र के खिलाफ विद्रोह का बिगुल बजाया. स्व की सीमाओं से मुक्त कबीर का विद्रोही स्वर शोषकों का दुश्मन है और निर्बलों का हितैषी. वे निर्बलों को सताने वालों को आगाह करते हुए लिखते हैं –

निर्बल को न सताइए जाकी मोटी हाय.

बिना जीव के साँस से ज्यों लौह भस्म हुई जाय॥

विवेकहीन धार्मिक-सांस्कृति और सामाजिक मूल्यों को मध्ययुगीन समाज अपना जीवन मूल्य बनाए हुए था. कबीर ने इनमें से अनेक मूल्यों को तोड़कर नए मूल्य की स्थापना का आह्वान किया. उन्होंने

अन्धविश्वासों की आलोचना किसी एक जाति और धर्म की सीमाओं से मुक्त होकर की है. मन्दिर-मस्जिद, तीर्थाटन व्रत, उपवास का विरोध करते हुए कबीर ने लिखा कि यदि मस्जिद में खुदा और मूर्तियों और तीर्थों में राम बसते हैं, तो बाकी चीजों में किसका बास है?

जौ रे खुदाइ मसीति बसत है, और मुलिक किस केरा.

तीरथ मूरति राम निवासा, दुहु मैं किनहूँ न हेरा..

(श्यामसुन्दर दास, *कबीर ग्रन्थावली*, पृ. 179)

कबीर ने धार्मिक कर्मकाण्डों और सामाजिक कुरीतियों का प्रतिरोध करते हुए जनता को भक्ति और अध्यात्म का नया रास्ता दिखाया. उन्होंने लक्ष्य किया की कर्मकाण्डों के चक्कर में पड़कर लोग अपने ईश्वर राम से दूर हो गए हैं. उन्होंने लिखा कि –

देव पूजि पूजि हिन्दू मूये तुरुक मूये हज जाई.

(श्यामसुन्दर दास, *कबीर ग्रन्थावली*, पृ. 194)

उन्होंने राम से दूर करने और जम के फेर में डालने वाले इन धार्मिक संस्कारों पर तीक्ष्ण व्यंग्य किया है. व्यंग्य उनके विद्रोही तेवर का स्वाभाविक और अचूक अस्त्र है.

मुसलमान दिन में रोजा रखते हैं और रात को जीव हिंसा करते हैं. वे जीव हिंसा करने वालों पर कटाक्ष करते हुए लिखते हैं कि घास खाने वाली बकरी की तो खाल काढ़ ली जाती है. जो बकरी खाते हैं उनका हाल क्या होगा?

बकरी पाती खात है, ताको काढ़ी खाल.

जे जन बकरी खात है, ताको कौन हवाल॥

कबीर के स्वर में ब्राह्मणों के छूआछूत विचार करने और समाज के बड़े तबके को भक्ति और धार्मिक संस्कारों से वंचित रखने के विरुद्ध तीखा प्रतिरोध मिलता है. इस प्रतिरोध में शोषित, वंचित तबकों के लिए न्याय, सम्मान और सहानुभूति का भाव है. यद्यपि कुछ सामाजिक तबके जैसे स्त्री के शोषण और अमानवीय स्थिति के खिलाफ कबीर के यहाँ प्रतिरोध नहीं है. बावजूद इसके सामन्ती समाज के जीवन मूल्यों का जिस कदर प्रतिरोध कबीर ने किया है, वह अद्वितीय है. यह प्रतिरोध कबीर को आधुनिक चेतना

के बहुत निकट ला देता है. इस प्रतिरोध से आधुनिक व्यक्ति सहमत होता जाता है. हालांकि उनके दर्शन से पूरी तरह सहमत होना मुश्किल है.

6.4. कबीर की प्रतिरोधी और विद्रोही भावना का सामाजिक आधार

सामाजिक आधार से जीवन-मूल्यों का अनिवार्य सम्बन्ध है. ये जीवन-मूल्य, विरोधी जीवन-मूल्यों का प्रतिरोध करते हैं. कबीर के सामाजिक प्रतिरोध और विद्रोह का सूत्र भी उनके सामाजिक आधार में लक्षित किया जा सकता है. उनके सामाजिक समूह, जाति, धर्म, संस्कृति, व्यवसाय, शिक्षा-दीक्षा आदि का उनकी रचनाओं पर गहरा प्रभाव पड़ा है. भक्ति-काव्य के अनेक आलोचकों ने भक्त कवियों की प्रवृत्तियों और उनके सामाजिक रिश्तों में सम्बन्ध की ओर संकेत किया है. यहाँ कबीर काव्य में मिलने वाले प्रतिरोध और विद्रोह के विभिन्न रूपों के सामाजिक आधार को समझने के लिए रचना और रचनाकार के सम्बन्धों को पहचानने का प्रयास किया जाएगा.

6.4.1 जातिगत आधार

कबीर ने जातिगत भेदभाव का उग्र विरोध किया है. उन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था को अमान्य ठहराया. इसका आधार उनके जाति और वर्ण में निहित है. कबीर एवं अन्य निम्नवर्गीय सन्तों की वाणियों में उच्च जाति के भक्तों के व्यवस्था-परिष्कार के विपरीत व्यवस्था-विद्रोह एवं परिवर्तन की आकांक्षा का भाव मिलता है. इसके सामाजिक आधार के रूप में रचनाकारों की जाति को रेखांकित करते हुए हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि – "भक्ति ने उत्तर भारत में आकर दो रूप ग्रहण किया. जो भक्त ऊँची जाति से आए थे वहाँ तत्कालीन समाज के प्रति वह विक्षोभ नहीं था, जिस आक्रामक रूप में वह उन भक्तों में प्रकट हुई, जो समाज की निचली श्रेणी की जातियों के भीतर से आए थे. उच्च जाति के भक्तों ने समाज में प्रचलित शास्त्रीय आचार–विचार, व्रत, उपवास, ऊँच–नीच की मर्यादा को स्वीकार कर लिया. उनका असन्तोष दूसरी श्रेणी के भक्तों से बिलकुल भिन्न था. वे सामाजिक व्यवस्था से असन्तुष्ट नहीं थे... जबकि निचली श्रेणी से आए भक्तों में सामाजिक व्यवस्था के प्रति तीव्र असन्तोष का भाव व्यक्त है और वैयक्तिक साधुता पर भी पर्याप्त बल है."

निचले तबके से आने के कारण कबीर की वाणी में निम्न वर्ग के प्रति सम्मान का भाव है. उनमें श्रम के प्रति आदर और भक्ति के प्रति दृढ़ भरोसा है. वे अपनी रचनाओं में अकुण्ठ भाव से बार-बार स्वयं को

जुलाहा कहते हैं. शोषण की अधिकता वाली सामाजिक स्थिति से आने के कारण उनका प्रतिरोध बहुत उग्र है. उनमें अस्वीकार करने का अपार साहस और भरपूर आत्मविश्वास है.

6.4.2 धार्मिक आधार

मध्यकालीन भारत में इस्लाम के आने के बाद निम्न वर्ग में बहुतों का धर्मांतरण हो गया था. उन्होंने इस्लामी संस्कृति को अपना लिया. हिन्दू संस्कृति की विरासत से भी उनके यहाँ बहुत कुछ रह गया. फलतः उनकी संस्कृति में हिन्दू-मुसलमान दोनों संस्कृतियों से जुड़ाव रह गया. कबीर निम्न वर्ग की ऐसी ही संस्कृति में पले बढ़े थे. उन्हें दोनों धर्म संस्कृतियों का अनुभव प्राप्त करने का मौका मिला. इसलिए उनकी रचनाओं में राम-रहीम के एक होने पर जोर है. इसी तरह उन्होंने पूजा और नमाज दोनों का मजाक बनाया है. उनके द्वारा काशी के पण्डित और मुल्ला की एक साथ खबर ली गई है.

6.4.3 लैंगिक आधार

कबीर की रचनाओं में स्त्री की निम्नतर सामाजिक स्थिति के लिए प्रतिरोध का स्वर नहीं है. वे भी अपने समकालीन भक्तों की तरह उसकी निन्दा और प्रशंसा का अंतर्द्वंद्व रचते हैं. इस प्रतिरोधहीनता के आधार को पितृसत्तात्मक व्यवस्था में उनकी लैंगिक स्थिति से जोड़कर समझा जा सकता है. साधक और भक्त के लिए काम सर्वाधिक हेय भाव है. साधना मार्ग में पुरुष साधक को स्त्री बाधक नजर आती है. वह अपने काम भाव का कारण अपने मन और चित्त के बजाय स्त्री को ठहराता है. इन्द्रिय निग्रह में अक्षम पुरुष, स्त्री को कोसने लगता है. स्त्री उसे पति के साथ पसन्द आती है. वह स्त्री के सती रूप का बखान करता है. उसका स्वतन्त्र रूप उसे विचलित करने लगता है. यह कबीर के प्रतिरोध की सीमा है.

6.5 सारबिंदु

कबीर की रचना हिन्दी साहित्य में सर्वाधिक प्रभावी प्रतिरोधी स्वर है. समाज के भेदकारी मूल्य और सत्ता को उनके उग्र विद्रोह का सामना करना पड़ा. कबीर ने जाति और धर्म के आधार पर मनुष्य को निम्न और श्रेष्ठ मानने वाली चेतना को तर्क के आधार पर चुनौती दी. अतार्किक सामाजिक रीति-रिवाजों, परम्पराओं, कर्मकाण्डों, अन्धविश्वासों के पालन के प्रति जनता को सचेत किया. इन सबका आधार उनके समाज के निम्न वर्ग में जन्म से जुड़ता है. उनकी सामाजिक स्थिति ने उनमें हिन्दू-मुलसलमान की एकता का बोध कराया. उनके प्रतिरोध के स्वर ने उनके सपनों की समानता और सम्मान पर आधारित समाज के निर्माण की प्रक्रिया को आज भी गतिशील रखा है.

6.6 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दीजिए :

1) कबीर के सामाजिक प्रतिरोध और विद्रोह का स्वरूप विवेचित कीजिए.
2) कबीर की प्रतिरोधी और विद्रोही भावना के सामाजिक आधारों का विवरण कीजिए.

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :

1) कबीर द्वारा जाति और वर्ण भेद का प्रतिरोध
2) कबीर द्वारा साम्प्रदायिक भेदभाव का प्रतिरोध
3) सामाजिक विवेकहीनता का प्रतिरोध
4) कबीर की प्रतिरोधी और विद्रोही भावना का जातिगत आधार

निम्नलिखित वाक्यों के सही अथवा गलत होने का निर्णय कीजिए :

1) कबीर को सबसे अधिक प्रासंगिक उनकी कविता में मौजूद विद्रोह की भावना बनाती है.
2) कबीर हिंसा, क्रूरता और अन्याय के विभिन्न रूपों के विरुद्ध मौन हैं.
3) कबीर का कहना है कि वेद प्रमाण नहीं है वरन् अनुभव प्रमाण है.
4) मध्यकालीन समाज में जाति-व्यवस्था बहुत कमजोर थी.
5) भारत में निम्न सामाजिक स्थिति पर धकेले जाने का प्रतिरोध करने वाले दलित आन्दोलनों ने सबसे अधिक कबीर को अपनाया है.

निम्नलिखित दोहों की पद पूर्ति कीजिए :

1) कबीरा खड़ा बजार में __________।
__________________ हमारे साथ॥
2) कबीर यह घर प्रेम का ___________।
___________________ एही माँही॥
3) निर्बल को न सताइए _____________।
_____________ लौह भस्म हुई जाय॥
4) हिन्दू कहें मोहि राम पियारा_______।
_____________ मरम न कोउ जाना
5) काँकर पाथर जोरिके ___________।
_____________ बहरो हुआ खुदाय॥

6.7 उपयोगी पाठ्यसामग्री

पुस्तकें

1. *कबीर ग्रन्थावली*, सम्पादक – डॉ. श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी,
2. *हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय*, पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ,
3. *कबीर*, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
4. *दादूदयाल*, रामबक्ष, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
5. *हिन्दी साहित्य कोश भाग-1*,धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल,वाराणसी
6. *हिन्दी साहित्य कोश भाग-2*,धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल,वाराणसी
7. *हिन्दी साहित्य का इतिहास*,आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,नागरी प्रचारणी सभा,वाराणसी
8. *हिन्दी साहित्य का उदभव और विकास*,हजारी प्रसाद द्विवेदी,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
9. *हिन्दी साहित्य की भूमिका*, हजारी प्रसाद द्विवेदी,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
10. *कबीर की सखियाँ*, संकलन वियोगी हरि, भारतीय साहित्य संग्रह

वेब लिंक्स

1. https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B8%E0%A4%82%E0%A4%A4%E0%A4%B8%E0%A4%BE%E0%A4%B9%E0%A4%BF%E0%A4%A4%E0%A5%8D%E0%A4%AF
2. https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%95%E0%A4%AC%E0%A5%80%E0%A4%B0
3. http://bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%95%E0%A4%AC%E0%A5%80%E0%A4%B0_%E0%A4%95%E0%A4%BE_%E0%A4%9C%E0%A5%80%E0

%A4%B5%E0%A4%A8_%E0%A4%AA%E0%A4%B0%E0%A4%BF%E0%A4%9A%E0%A4%AF

4. http://bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%95%E0%A4%AC%E0%A5%80%E0%A4%B0

5. http://www.bharatdarshan.co.nz/magazine/literature/226/kabir-ke-dohe.html

6. http://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%95%E0%A4%AC%E0%A5%80%E0%A4%B0

7. https://www.youtube.com/watch?v=44M6yyIxJYk

8. https://www.youtube.com/watch?v=WEWbl-YbowU

इकाई 7 हिन्दी आलोचना में कबीर

इकाई की रूपरेखा

7.1 उद्देश्य

7.2 प्रस्तावना

7.3 कबीर सम्बन्धी हिन्दी आलोचना का परिदृश्य

7.3.1. रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना-दृष्टि में कबीर

7.3.2. हजारीप्रसाद द्विवेदी की आलोचना-दृष्टि में कबीर

7.4 परवर्ती आलोचना में कबीर

7.4.1. प्रगतिशील आलोचना में कबीर

7.4.2. समूहगत विमर्श

7.5 सारबिंदु

7.6 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

7.7 उपयोगी पाठ्यसामग्री

7.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त आप –

- हिन्दी आलोचना में कबीर सम्बन्धी किए गए चिन्तनों से परिचित हो सकेंगे.
- कबीर काव्य का महत्त्व समझ सकेंगे.
- विभिन्न आलोचकों की कबीर सम्बन्धी अवधारणाओं की तुलना कर सकेंगे.
- कबीर का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने के विभिन्न प्रतिमानों को समझ पाएँगे.

7.2 प्रस्तावना

कबीर की कविता हिन्दी आलोचना के सर्वाधिक विचारणीय काव्य-क्षेत्रों में शामिल रही है. इसकी व्यापक और सुदीर्घ लोकप्रियता तथा क्रान्तिकारी प्रभावों ने हिन्दी आलोचकों को अपनी ओर आकर्षित किया है. आलोचकों को यह अपने कालजयी मूल्यों और साहित्यिक तत्त्वों के अन्वेषण के लिए आमन्त्रण और चुनौती देता रहा है. हिन्दी के प्रमुख आलोचकों ने कबीर-काव्य के सामाजिक सरोकारों के साथ क्रान्तिकारी परिवर्तन की भूमिका की भी तलाश की है. कबीर की कविता अनेक आलोचकों के आलोचना के प्रतिमान विकसित करने का आधार भी बनी है. ऐसे में यह जानना जरूरी है कि हिन्दी

आलोचना में कबीर की कविता का मूल्यांकन किस रूप में किया गया है? उसके मूल्यांकन के लिए विभिन्न आलोचकों ने क्या आधार चुना है? आलोचकों ने कबीर की कविता से क्या निष्कर्ष निकाले हैं; और इसने भक्ति-काव्य को समझने के तरीके को कैसे प्रभावित किया है इन बातों को ध्यान में रखकर इस पाठ में विचार किया गया है.

7.3 कबीर सम्बन्धी हिन्दी आलोचना का परिदृश्य

परवर्ती काल के अनुयायियों के साथ-साथ उनके समकालीनों ने भी कबीर के रचनाओं पर विचार किया है. इनमें हिन्दी आलोचना के उद्भव के पूर्व के रचनाकार नाभादास के कबीर सम्बन्धी दो छप्पय बहुत महत्त्वपूर्ण हैं. कबीर सम्बन्धी एक प्रसिद्ध छप्पय में नाभादास ने लिखा है –

कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट दरसनी .

भक्ति विमुख जो धर्म सो अधरम कर गायौ .

जोग, जग्य, व्रत, दान, भजन, बिनु तुच्छ दिखायो .

हिन्दू तुरक प्रमान, रमैनी, शबदी, साखी .

पक्षपात नहीं बचन, सबही के हित की भाखी .

आरूढ़ दसा हे जगत पर, मुख देखी नाहिन भनी .

कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट दरसनी .

(प्रकाश नारायण दीक्षित (सं); *भक्तमाल : एक अध्ययन*, प्रथम संस्करण सन् 1961, साहित्य भवन, इलाहाबाद, पृ. 69)

अर्थात् कबीर ने भक्ति से विमुख धर्म को अधर्म कहा. योग, यज्ञ, व्रत और दान को भजन बिना तुच्छ बताया. हिन्दू और तुर्क में भेद करने के बजाय पक्षपात रहित रहने को कहा और सबका हित करने वाली साखी, शबद, रमैनी के रूप में अपना वचन सुनाया. किसी की मुँहदेखी नहीं कही, चाहे वह कितना भी बड़ा हो. और वर्णाश्रम और षटदर्शन की मर्यादा नहीं रखी. नाभादास को कबीर की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ चिन्हित करने में पर्याप्त सफलता मिली है. नाभादास ने अपने भक्तमाल में मीरा की विशेषताएँ भी इतनी ही बारीकी से गिनाई. कबीर काव्य के आधुनिक आलोचकों ने भी विस्तार से कबीर का यही रूप प्रस्तुत किया है. कबीर ने वर्ण, धर्म, जाति आदि के आधार पर भेद करने को अस्वीकार किया और

समानतापरक मानवीय मूल्यों की स्थापना पर जोर दिया. उन्होंने बाह्याडम्बर और कर्मकाण्ड के बजाय शान्त समर्पित भक्ति और प्रेम का मार्ग दिखाया.

आधुनिक काल से पूर्व निर्मित कबीर की यह छवि हिन्दी आलोचना को विरासत में मिली थी. हिन्दी आलोचना आरम्भ में कमोवेश इसी रास्ते की ओर उन्मुख हुई. हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों – गार्सा द तासी, शिव सिंह सैंगर, जॉर्ज गियर्सन, मिश्रबन्धुओं ने कबीर की नोटिस ली, जो विकास की दृष्टि से भले ही महत्त्वपूर्ण हों पर कबीर काव्य के मूल्यांकन की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं हैं. उल्लेखनीय है कि मिश्रबन्धुओं ने कबीर को तुलसी और सूर के साथ हिन्दी कविता के नवरत्नों में स्थान दिया था. उनके बाद के हिन्दी साहित्य के इतिहासकार रामचन्द्र शुक्ल ने कविता की त्रिवेणी में जायसी को शामिल किया और कबीर को बाहर कर दिया. इसी समय सन् 1916 ई. में अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध ने *कबीर-वचनावली* का सम्पादन कर उसकी लम्बी भूमिका लिखी. इस भूमिका में उन्होंने कबीर की रचनाओं को हिन्दू-पद्धति के अनुरूप दिखाने की कोशिश की. कबीर सम्बन्धी आलोचना की दृष्टि से तीसरे दशक में आई श्यामसुन्दर दास द्वारा सम्पादित कबीर ग्रन्थावली की महत्त्वपूर्ण भूमिका है. उन्होंने एक तरफ तो बाद के आलोचकों के लिए पाठाधार का निर्माण कर दिया और दूसरी तरफ उसकी प्रस्तावना में कबीर सम्बन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण दिशाओं का उल्लेख किया. कबीर सम्बन्धी आलोचना में उल्लेखनीय परिवर्तन सन् 1942 में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की पुस्तक कबीर के प्रकाशन के बाद आया. यह पुस्तक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की बहुत-सी मान्यताओं का प्रतिवाद करती थी. इसलिए हम पहले रामचन्द्र शुक्ल की कबीर सम्बन्धी आलोचना से परिचित होंगे. इसके बाद आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की स्थापनाओं को समझेंगे.

7.3.1. रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना-दृष्टि में कबीर

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की कबीर सम्बन्धी आलोचना में कबीर एवं निर्गुण सन्तों के प्रति नकारात्मक दृष्टि स्पष्ट झलकती है. तुलसी की रचनाओं के आधार पर आलोचकीय प्रतिमान विकसित करने वाले आचार्य शुक्ल ने भक्ति के तीन अंग – कर्म, धर्म और ज्ञान माने हैं . उनके मत से रामकाव्य इसीलिए सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि उसमें तीनों अंगों का पूर्ण विकास मिलता है. इस प्रतिमान पर उन्हें कबीर आदि सन्तों का निर्गुण-काव्य सीमित महत्त्व का लगा. उन्होंने उसे कर्म से दूर कर देने वाला माना. उन्होंने लिखा कि – "कबीर तथा अन्य निर्गुणपन्थी सन्तों के द्वारा अन्तस्साधना में रागात्मिका 'भक्ति' और 'ज्ञान' का योग तो हुआ, पर 'कर्म' की दशा वही रही, जो नाथपन्थियों के यहाँ थी. इन सन्तों के ईश्वर ज्ञानस्वरूप और

प्रेमस्वरूप ही रहे, धर्मस्वरूप न हो पाए.” (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, *हिन्दी साहित्य का इतिहास*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, कालविभाग, पृ. 42)

रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना की शैली केवल निर्णयकर्ता वाली नहीं है, बल्कि वे साहित्य का विश्लेषण भी करते हैं. कबीर-काव्य के आलोचनात्मक विश्लेषण में उन्होंने कबीर की अनेक विशेषताएँ रेखांकित की हैं, जो उल्लेखनीय हैं. उन्होंने कबीर को निर्गुण पन्थ का प्रवर्तक माना है. वे लिखते हैं कि – “नामदेव की रचना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि निर्गुणपन्थ के लिए मार्ग निकालनेवाले नाथपन्थ के योगी और भक्त नामदेव थे. जहाँ तक पता चलता है, ‘निर्गुण मार्ग’ के निर्दिष्ट प्रवर्तक कबीरदास ही थे...” आचार्य शुक्ल ने कबीर को हिन्दू और मुसलमान के बीच सामान्य भक्ति मार्ग निकालकर एकता स्थापित करने का श्रेय दिया है. वे लिखते हैं कि “भक्ति के आन्दोलन की जो लहर दक्षिण से आई, उसी ने उत्तर भारत की परिस्थिति के अनुरूप हिन्दू मुसलमान दोनों के लिए एक सामान्य भक्तिमार्ग की भी भावना कुछ लोगों में जगाई. ...महाराष्ट्र देश के प्रसिद्ध भक्त नामदेव (संवत् 1328-1408) ने हिन्दू-मुसलमान दोनों के लिए एक सामान्य भक्तिमार्ग का भी आभास दिया. उसके पीछे कबीरदास ने विशेष तत्परता के साथ एक व्यवस्थित रूप में यह मार्ग निर्गुणपन्थ के नाम से चलाया.”

रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर काव्य के सामाजिक महत्त्व को भी रेखांकित किया. वे कबीर की भक्ति को शुष्कता एवं निम्नवर्गीय जनता की आत्मदीनता के भाव से उबारने के कारण महत्त्वपूर्ण मानते हैं. उन्होंने लिखा है कि “इसमें कोई सन्देह नहीं कि कबीर ने ठीक मौके पर जनता के उस बड़े भाग को सँभाला जो नाथपन्थियों के प्रभाव से प्रेमभाव और भक्तिरस से शून्य और शुष्क पड़ता जा रहा था. उनके द्वारा यह बहुत ही आवश्यक कार्य हुआ. इसके साथ ही मनुष्यत्व की सामान्य भावना को आगे करके निम्न श्रेणी की जनता में उन्होंने आत्मगौरव का भाव जगाया और भक्ति के ऊँचे से ऊँचे सोपान की ओर बढ़ने के लिए बढ़ावा दिया.”(आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, *हिन्दी साहित्य का इतिहास*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, कालविभाग, पृ. 42)

इस तरह शुक्ल शिक्षित जनता के लिए कबीर एवं निर्गुण सन्तों के महत्त्व को अमान्य करते हुए भी उन्हें निम्न वर्ग के समाज सुधारक के रूप में देख रहे थे. शुक्ल लिखते हैं कि “संस्कृत बुद्धि, संस्कृत हृदय और संस्कृत वाणी का वह विकास इस शाखा में नहीं पाया जाता जो शिक्षित समाज को अपनी ओर आकर्षित

करता. पर अशिक्षित और निम्न श्रेणी की जनता पर इन सन्त महात्माओं का बड़ा भारी उपकार है. उच्च विषयों का कुछ आभास देकर, आचरण की शुद्धता पर जोर देकर, आडम्बरों का तिरस्कार करके, आत्मगौरव का भाव उत्पन्न करके, इन्होंने इसे ऊपर उठाने का स्तुत्य प्रयत्न किया. पाश्चात्यों ने इन्हें जो धर्मसुधारक की उपाधि दी है, वह इसी बात को ध्यान में रखकर."

कबीर काव्य के सामाजिक सरोकार के साथ ही उसके स्वरूप, दार्शनिक आधार और उसकी साहित्यिक विशेषताएँ भी शुक्ल जी द्वारा रेखांकित की गई हैं. कबीर काव्य पर अद्वैतवाद, सूफीवाद, सिद्ध-नाथ आदि विचारधारा के प्रभाव को रेखांकित करते हुए उन्होंने लिखा कि "सारांश यह कि जो ब्रह्म हिन्दुओं की विचारपद्धति में ज्ञान मार्ग का एक निरूपण था उसी को कबीर ने सूफियों के ढर्रे पर उपासना का ही विषय नहीं, प्रेम का भी विषय बनाया और उसकी प्राप्ति के लिए हठयोगियों की साधना का समर्थन किया. इस प्रकार उन्होंने भारतीय ब्रह्मवाद के साथ सूफियों के भावात्मक रहस्यवाद, हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद और वैष्णवों के अहिंसावाद तथा प्रपत्तिवाद का मेल करके अपना पन्थ खड़ा किया. उनकी बानी में ये सब अवयव स्पष्ट लक्षित होते हैं." शुक्ल जी ने कबीर पर इन प्रभावों को विस्तार से रेखांकित किया है. कबीर काव्य के सामाजिक सरोकार को रेखांकित करते हुए शुक्ल जी ने उनकी कर्मकाण्ड और बाह्याचारों की आलोचना कर मनुष्यों में भेद को मिटाने वाली विशेषता को रेखांकित किया है.

उन्होंने लिखा है कि "उपासना के बाह्य स्वरूप पर आग्रह करने वाले और कर्मकाण्ड को प्रधानता देने वाले पण्डितों और मुल्लों दोनों को उन्होंने खरी-खरी सुनाई और राम-रहीम की एकता समझा कर हृदय को शुद्ध और प्रेममय करने का उपदेश दिया. देशाचार और उपासना विधि के कारण मनुष्य-मनुष्य में जो भेदभाव उत्पन्न हो जाता है, उसे दूर करने का प्रयास उनकी वाणी बराबर करती रही."

रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर के माधुर्य के पदों को काम-वासना से मुक्त रखने के लिए प्रशंसा की है. वे लिखते हैं कि "कबीर का 'ज्ञानपक्ष' तो रहस्य और गुह्य की भावना से विकृत मिलेगा, पर सूफियों से जो प्रेम-तत्त्व उन्होंने लिया वह सूफियों के यहाँ चाहे कामवासनाग्रस्त हुआ हो, पर 'निर्गुणपन्थ' में अविकृत रहा. यह निस्सन्देह प्रशंसा की बात है." इसके अतिरिक्त कबीर की कविता में मौजूद विरोधों से चमत्कारी प्रभाव पैदा करने की क्षमता को भी रेखांकित किया है. आचार्य शुक्ल ने यह माना है कि "यद्यपि वे पढ़े लिखे न थे, पर

उनकी प्रतिभा बड़ी प्रखर थी, जिससे उनके मुँह से बड़ी चुटीली और व्यंग्य चमत्कारपूर्ण बातें निकलती थीं. इनकी उक्तियों में विरोध और असम्भव का चमत्कार लोगों को बहुत आकर्षित करता था."

यह ध्यान रखना चाहिए कि कबीर सम्बन्धी आचार्य शुक्ल का तमाम विश्लेषण एक नकारात्मक चेतना के साए में हुआ है, इसलिए विशेषताओं के रेखांकन के बावजूद, वे कबीर को महत्त्व नहीं दे पाए. कबीर के सम्बन्ध में उनकी यह राय बनी रही कि "कबीर अपने श्रोताओं पर यह अच्छी तरह भासित करना चाहते थे कि हमने ब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया है, इसी से वे प्रभाव डालने के लिए बड़ी लम्बी चौड़ी गर्वोक्तियाँ भी कभी-कभी कहते थे." कबीर की आलोचना करते हुए शुक्ल जी ने कई ऐसी स्थापनाएँ या निष्कर्ष दिए जो उनके विश्लेषण के विरुद्ध जा रहे थे. कबीर की कविता की दीर्घ लोकप्रियता और व्यापक सामाजिक प्रभाव उसे नए ढंग से पढ़े जाने की माँग कर रहा था. हिन्दी आलोचना में शुक्ल के बाद पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल और फिर हजारीप्रसाद द्विवेदी ने यह महत्त्वपूर्ण कार्य किया.

7.3.2. हजारीप्रसाद द्विवेदी की आलोचना-दृष्टि में कबीर

हिन्दी साहित्य में कबीर के महत्त्व की स्थापना का श्रेय हजारीप्रसाद द्विवेदी को है. उन्होंने तीन पुस्तकों *मध्यकालीन धर्म-साधना*, *कबीर* और *हिन्दी साहित्य की भूमिका* में कबीर की रचनाओं के आधार पर विकसित प्रतिमानों से भक्तिकालीन साहित्य को देखा. शुक्ल जी ने कबीर को समाज- सुधारक माना था, कवि नहीं. द्विवेदी जी का मत है कि कबीर को कवि, समाज-सुधारक, धर्म-प्रवर्तक आदि रूपों के बजाय भक्त और आध्यात्मिक गुरु के रूप में देखना चाहिए. सन् 1942 में प्रकाशित *कबीर* हिन्दी आलोचना की पहली पुस्तक है, जिसमें कबीर-काव्य पर स्वतन्त्र रूप से विचार किया गया है. इसमें द्विवेदी ने लिखा कि "कबीर धर्मगुरु थे. इसलिए उनकी वाणियों का आध्यात्मिक रस ही आस्वाद्य होना चाहिए." कबीर-काव्य के विश्लेषण के बाद दिए गए उनके कई अन्य निष्कर्ष इस राय से अलग कबीर को अद्वितीय कवि के रूप में स्थापित करने वाले हैं. कबीर की काव्य-भाषा को शुक्ल जी ने उबड़-खाबड़ और अटपटी कहा था. द्विवेदी जी ने कबीर को भाषा का पूर्ण अधिकारी घोषित करते हुए लिखा कि "भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था. वे वाणी के डिक्टेटर थे, जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है, उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया – बन गया है तो सीधे-सीधे नहीं तो दरेरा देकर. भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार-सी नजर आती है. उसमें मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी

फरमाइश को नहीं कह सके. और अकह कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की तो जैसी ताकत कबीर की भाषा में है, वैसी बहुत कम लेखकों में पाई जाती है. ...वाणी के ऐसे बादशाह को साहित्य-रसिक काव्यानन्द का आस्वादन कराने वाला समझें तो उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता." द्विवेदी जी ने कबीर की भाषा की व्यंग्य-क्षमता की भी भरपूर सराहना की है. उन्होंने लिखा कि "व्यंग्य करने में और चुटकी लेने में भी कबीर अपना प्रतिद्वन्दी नहीं जानते. पण्डित और काजी, अवधू और जोगिया, मुल्ला और मौलवी – सभी उनके व्यंग्य से तिलमिला जाते हैं. अत्यन्त सीधी भाषा में वे ऐसी चोट करते हैं कि चोट खानेवाला केवल धूल झाड के चल देने के सिवा और कोई रास्ता नहीं पाता." कबीर की इन क्षमताओं ने उन्हें यह मानने पर मजबूर किया है कि उनकी कविता साहित्यिकता से भरपूर है, मगर वे कबीर को भक्त रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते हैं, इसलिए वे उनके कवि रूप को पार्श्व में रखते हैं. उन्होंने लिखा है कि "इस प्रकार यद्यपि कबीर ने कहीं काव्य लिखने की प्रतिज्ञा नहीं की, तथापि उनकी आध्यात्मिक रस की गगरी से छलके हुए रस से काव्य की कटोरी में भी कम रस इकट्ठा नहीं हुआ है." द्विवेदी जी की स्थापनाओं के अनुसार कबीर को कवि नहीं मानने के पहले यह ध्यान रखना चाहिए कि उन्होंने तुलसीदास को भी कवि माना है और कबीर को उनकी तुलना में अद्वितीय कहा है. वे लिखते हैं कि "हिन्दी-साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर-जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ. महिमा में यह व्यक्तित्व केवल एक ही प्रतिद्वंद्वी जानता है, वे हैं; तुलसीदास. परन्तु तुलसीदास और कबीर के व्यक्तित्व में बड़ा अन्तर था. यद्यपि दोनों ही भक्त थे, परन्तु दोनों स्वभाव, संस्कार और दृष्टिकोण में एकदम भिन्न थे. मस्ती फक्कड़ाना स्वभाव और सब कुछ को झाड़-फटकार कर चल देनेवाले तेज ने कबीर को हिन्दी-साहित्य का अद्वितीय व्यक्ति बना दिया है."

द्विवेदी जी ने कबीर सम्बन्धी पूर्ववर्ती, और विशेषकर शुक्ल जी की आलोचना के बाद पैदा हुई बहुत सी भ्रान्तियों का निवारण किया. भारत की धर्म और काव्य-परम्परा का गहन अन्वेषण कर उन्होंने साबित किया कि कबीर किसी विदेशी धर्म दर्शन को अपनाकर नहीं चले थे, बल्कि उनकी काव्य-परम्परा का मूल भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में है. शुक्ल जी ने परम्परा के भीतर शास्त्र के स्वीकार को महत्त्व दिया था. द्विवेदी जी ने लोक तथा अस्वीकार और संघर्ष को महत्त्व दिया. उन्होंने साहित्य की धारा को सांस्कृतिक विरासत से जोड़कर देखने पर जोर दिया. उनकी भारतीय परम्परा हिन्दू परम्परा नहीं है. उसमें बौद्ध, जैन धर्म, अनेक मत-मतान्तर और लोक-पक्ष भी शामिल है. ये आलोचनात्मक प्रतिमान विकसित करने में

उन्होंने कबीर काव्य को आधार के रूप में ग्रहण किया है. इन प्रतिमानों के निर्माण के जरिए उन्होंने कबीर को हिन्दी के अद्वितीय भक्त कवि के रूप में स्थापित करने में सफलता पाई है.

7.4 परवर्ती आलोचना में कबीर

शुक्ल जी एवं द्विवेदी जी की कबीर सम्बन्धी स्थापनाओं ने जिस संवाद की शुरुआत की थी, उसमें स्वातन्त्र्योत्तर युग के आलोचकों – मुक्तिबोध, रामकुमार वर्मा, पारसनाथ तिवारी, माताप्रसाद गुप्त, रामविलास शर्मा, रांगेय राघव, नामवर सिंह, शिवकुमार मिश्र आदि ने भी भागीदारी की है. स्त्री, दलित आदि समूहगत विमर्शों के उत्थान के बाद कबीर के आलोचनात्मक मूल्यांकन में निर्णायक परिवर्तन आया है, विशेष रूप से दलित आलोचना ने कबीर की नई व्याख्या की है. दलित आलोचकों में डॉ. धर्मवीर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं.

7.4.1. प्रगतिशील आलोचना में कबीर

प्रगतिशील आलोचकों ने सामाजिक कुरीतियों, जाति और धर्मगत आडम्बरों की आलोचना कर नये समाज के निर्माण के कबीर के प्रयास पर बल दिया. उन्होंने कबीर को तुलसी से भिन्न पथ पर चलने वाले क्रान्तिकारी कवि के रूप में स्थापित किया. इस दृष्टि से मुक्तिबोध का मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन का एक पहलू उल्लेखनीय है. वे कुरीतियों, धार्मिक अन्धविश्वास और जातिवाद के खिलाफ आवाज उठाने के कारण तुलसीदास की तुलना में कबीर को अधिक आधुनिक मानते हैं. उन्होंने लिखा कि "राम के चरित्र द्वारा और तुलसीदासजी के आदर्शों द्वारा सदाचार का रास्ता भी मिला. किन्तु वह मार्ग कबीर के और अन्य निर्गुणवादियों के सदाचार का जनवादी रास्ता नहीं था. सच्चाई और ईमानदारी, प्रेम और सहानुभूति से ज्यादा बड़ा तकाजा था सामाजिक रीतियों का पालन." (मुक्तिबोध, *मध्यकालीन भक्ति-आन्दोलन का एक पहलू, मुक्तिबोध रचनावली*, खण्ड-5, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1986, पृ. 294) इसलिए वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि "तुलसीदासजी को पुरातनवादी कहा जाएगा कबीर की तुलना में, जिनके विरुद्ध शुक्लजी ने चोटें की हैं." (वही, पृ. 294) कबीर के मूल्यांकन की दृष्टि से नामवर सिंह की दूसरी परम्परा की खोज पुस्तक भी उल्लेखनीय है. इसमें कबीर के लोकधर्म और अस्वीकार के साहस के सहारे दूसरी परम्परा की परिकल्पना की गई है, जिसमें हजारीप्रसाद द्विवेदी का भक्ति-काव्य सम्बन्धी लेखन की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण है. कबीर पर नामवर सिंह ने कुछ स्वतन्त्र आलेखों के रूप में भी विचार किया है. मुक्तिबोध की

तरह उन्होंने भी कबीर के सामन्ती पुरोहिती जकड़बन्दी के खिलाफ आवाज बुलन्द करने को क्रान्तिकारी कर्म के रूप में रेखांकित किया है. सन् 1982 में प्रकाशित अस्वीकार का साहस में वे लिखते हैं कि “कबीर जैसे सन्त का विरोध सम्भवत: इसी सामन्ती-पुरोहिती के दमन के चक्र से था, जिसमें जनसाधारण हिन्दू-मुसलमान, दोनों ही पिस रहे थे. यह दमन-चक्र किसी राजनीतिक अत्याचार से कितना अधिक और अमानुषिक है, इसे आज स्वाधीन भारत के किसी क्रान्तिकारी को बतलाने की जरूरत नहीं है. इसलिए यदि कबीर ने अपने जमाने के किसी सुल्तान को छोड़कर सामन्ती-पुरोहिती शक्तियों के खिलाफ आवाज उठाई तो सिर्फ इसी कारण उनकी क्रान्तिकारिता कम नहीं हो जाती.”

7.4.2. समूहगत विमर्श

हिन्दी आलोचना ने बीसवीं सदी के अन्तिम दशक तक आते-आते स्त्री, दलित, आदिवासी आदि समूहों के विमर्श के रूप में नई दिशा और तेवर ग्रहण किया. स्त्री आलोचकों ने कबीर की स्त्री-दृष्टि की आलोचना की. उन्होंने पितृसत्ता के नकारात्मक प्रभाव को वहन करने और सँवारने की दृष्टि से कबीर को सगुण भक्तों के समान ही निन्दनीय ठहराया. कबीर से भी अधिक स्त्रीवादी आलोचना ने कबीर के पदों की पितृसत्तात्मक नकारात्मकता से युक्त व्याख्या करने वाले आलोचकों की आलोचना की. अनुराधा ने *सती प्रथा, भक्ति-काव्य और हिन्दी मानसिकता* नामक आलेख में कबीर के एक प्रसिद्ध पद की नई व्याख्या प्रस्तुत करते हुए लिखा कि “प्रसिद्ध पद दुलहिन गावहु मंगलाचार को ‘मंगलाचार’ शब्द पर जोर देकर सीधे-सीधे विवाह-उत्सव का गीत व्याख्यायित किया गया. लेकिन विवाह में ‘सरोवर के किनारे वेदी’ बनाने का विधान तो है नहीं और राजस्थान में सती के गीतों को ‘मंगलाचार’ कहते हैं. यहाँ यह बात उठाते ही व्याख्या खण्ड-खण्ड हो जाती है. ‘सरोवर’ पर जोर देते ही अर्थ विधान ‘दुल्हन’ को ‘सती’ के लिए लाई गई स्त्री में बदल देता है.” (अनुराधा, *सती प्रथा, भक्ति-काव्य और हिंदी मानसिकता*, फिलहाल 21-22, सम्पादक- प्रीति सिन्हा, नवंबर 2009, पृ. 22) यह व्याख्या पूर्ववर्ती व्याख्याओं से निर्मित कबीर की छवि को पलट देने वाली है. इसके बाद वे कबीर के आलोचकों की आलोचना करती हुई लिखती हैं कि “यदि यह मान लें कि कबीर का मन्तव्य उस विशिष्ट दार्शनिक सत्य को उद्घाटित करना है तो उनके द्वारा अपनाया गया सती का यह ‘रूप-विधान’ निन्दनीय है और यदि नहीं है तो हिन्दी आलोचना के ऐसे प्रयास निंदनीय हैं

जो खींचतान कर उसे दर्शन के ऐसे आयामों तक ले जाते हैं." (अनुराधा, *सती प्रथा, भक्ति-काव्य और हिंदी मानसिकता*, फिलहाल 21-22, सम्पादक- प्रीति सिन्हा, नवंबर 2007, पृ. 23)

दलित विमर्श आधारित आलोचना ने कबीर को अपना कवि घोषित कर उनके नए दलित-विमर्शपरक अर्थ तलाशे. इस दृष्टि से डॉ. धर्मवीर की कबीर सम्बन्धी कई पुस्तकें उल्लेखनीय हैं. कबीर और उनके आलोचक तथा इसी कड़ी में आई दो अन्य पुस्तकों में उन्होंने हिन्दी के पूर्ववर्ती आलोचकों की कबीर सम्बन्धी मूल्यांकन की सीमाओं का बखूबी उद्घाटन किया है. धर्मवीर मानते हैं, "मेरी खोज है कि ब्राह्मणों ने और ब्राह्मणों के शिष्यत्व में ब्राह्मणेतर द्विज आलोचकों ने कबीर को उनकी दलित जुलाहे जाति से और कबीरपन्थ को काटकर अपने वैदिक घर के बाहर पिंजड़े में सगुण का रामनाम जपने वाला तोताराम बना दिया है. यूँ, मेरे द्वारा अब तक के किए गए कबीर के अध्ययन के निम्न तीन परिणाम निकलते हैं :

1. यह नहीं माना जा सकता कि कबीर को लेकर ब्राह्मणों के चिन्तन में कोई सुधार या बदलाव सम्भव है, क्योंकि उनकी दृष्टि पिछले तीन हजार सालों से पूरी, परिपक्व और एक-सी है.

2. ब्राह्मणेतर द्विज आलोचक ब्राह्मणों के शिष्यत्व से बाहर आ सकते हैं. वे अपनी बौद्ध, जैन और सिक्ख परम्पराओं से जान-पहचान बढ़ाएँ तो उनकी स्वतन्त्र पहचान बन सकती है.

3. विदेशी विद्वान कबीर को सामाजिक सन्दर्भ देने के अपने शोधकार्य में जुटे हुए ही हैं. (डॉ. धर्मवीर, *कबीर के कुछ और आलोचक*, वाणी प्रकाशन, 2009, पृ. 8)

कबीर सम्बन्धी समूहगत आलोचना का विकास जाति के प्रश्न पर कबीर जैसी पुस्तकों के रूप में देखा जा सकता है. यह पुस्तक कबीर के जुलाहा एवं मुसलमान होने के तथ्य को आधार बनाकर उन्हें बहुसंख्यक पिछड़ी जाति का घोषित करती है एवं उनके वर्चस्वकामी विमर्श के लिए इस्तेमाल का प्रतिवाद करती है.

7.5 सारबिंदु

इस तरह हम कह सकते हैं कि हिन्दी आलोचना में कबीर-काव्य का कई प्रतिमानों के आधार पर विश्लेषण किया गया है. कबीर के महत्त्व की शुक्ल जी से शुरू हुई पहचान द्विवेदी तक आकर स्पष्ट हो गई. शुक्ल की नकारात्मकता और श्यामसुन्दर दास के अनिश्चय को द्विवेदी जी के विश्लेषणों ने समाप्त कर कबीर के स्वीकार का दौर आरम्भ किया. प्रगतिशील आलोचना ने इन आलोचकों द्वारा स्थापित किए जा रहे कबीर के भक्त रूप को किनारे रखा और सामन्ती-पुरोहिती व्यवस्था की आलोचना को आगे बढ़ाया.

उन्होंने जनता के शोषण के खिलाफ आवाज उठाने वाले के रूप में कबीर को रेखांकित करते हुए भक्तिकाल के सबसे महत्त्वपूर्ण कवि के रूप में प्रतिष्ठित किया. दलित विमर्श ने कबीर को अपना मार्गदर्शक माना और उनके कविता की निम्नवर्गीय समाज के आक्रोश को स्वर देने वाली कविता के रूप में उनकी रचनाओं की व्याख्या की. स्त्रीवादी आलोचना ने कबीर की पितृसत्तात्मक चेतना की सीमा को रेखांकित किया. इस तरह हिन्दी आलोचना-संवाद की प्रक्रिया के जरिए कबीर के विभिन्न रूपों को तथा उनकी कविता के विविध पहलुओं को रेखांकित करने में सफल रही है. आगे भी इस विकास-यात्रा के चलते रहने की पूरी सम्भावना है.

7.6 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दीजिए :

1) रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना-दृष्टि में कबीर का मूल्यांकन कीजिए.
2) परवर्ती आलोचना में कबीर का स्थान निर्धारित कीजिए.

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :

1) आरंभिक आलोचना दृष्टि में कबीर
2) शुक्ल जी के कबीर
3) हजारीप्रसाद द्विवेदी जी के कबीर
4) प्रगतिशील आलोचना दृष्टि में कबीर

निम्नलिखित वाक्यों के सही अथवा गलत होने का निर्णय कीजिए :

1) कबीर ने वर्ण, धर्म, जाति आदि के आधार पर भेद करने को स्वीकार किया.
2) कबीर ने बाह्याडम्बर और कर्मकाण्ड के बजाय शान्त समर्पित भक्ति और प्रेम का मार्ग दिखाया.
3) द्विवेदी जी का मत है कि कबीर को कवि, समाज-सुधारक, धर्म-प्रवर्तक आदि रूपों के बजाय भक्त और आध्यात्मिक गुरु के रूप में देखना चाहिए.
4) हिन्दी साहित्य में कबीर के महत्त्व की स्थापना का श्रेय आचार्य रामचंद्र शुक्ल को है.
5) रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर काव्य के सामाजिक महत्त्व को भी रेखांकित किया है.

निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए :

1) हिन्दी आलोचना के उद्भव के पूर्व के रचनाकार _______ के कबीर सम्बन्धी दो छप्पय बहुत महत्त्वपूर्ण हैं.
2) __________ ने कबीर को तुलसी और सूर के साथ हिन्दी कविता के नवरत्नों में स्थान दिया था.

3) __________ कबीर को निर्गुण पन्थ का प्रवर्तक माना है.

4) कबीर आलोचना पर सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक ____________________ द्वारा लिखित 'कबीर' है.

5) कबीर के मूल्यांकन की दृष्टि से नामवर सिंह की '________________' पुस्तक भी उल्लेखनीय है.

7.7 उपयोगी पाठ्यसामग्री

पुस्तकें

1. *भक्तमाल : एक अध्ययन*, प्रकाश नारायण दीक्षित,साहित्य भवन, इलाहाबाद

2. *कबीर के कुछ और आलोचक*, डॉ. धर्मवीर, वाणी प्रकाशन

3. *मध्यकालीन भक्ति-आन्दोलन का एक पहलू*, मुक्तिबोध, मुक्तिबोध रचनावली, खण्ड-5, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

4. *कबीर ग्रन्थावली*, सम्पादक – डॉ. श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी,

5. *हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रप्दाय*, पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ,

6. *कबीर*, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

7. *हिन्दी साहित्य कोश भाग-1*,धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल,वाराणसी

8. *हिन्दी साहित्य कोश भाग-2*,धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल,वाराणसी

9. *हिन्दी साहित्य का इतिहास*,आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,नागरी प्रचारणी सभा,वाराणसी

10. *हिन्दी साहित्य का उदभव और विकास*,हजारी प्रसाद द्विवेदी,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

11. *हिन्दी साहित्य की भूमिका*, हजारी प्रसाद द्विवेदी,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

12. *कबीर की सखियाँ*, संकलन वियोगी हरि, भारतीय साहित्य संग्रह

वेब लिंक्स

1. http://www.ignca.nic.in/coilnet/kabir055.htm

2. http://bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%95%E0%A4%AC%E0%A5%80%E0%A4%B0_%E0%A4%95%E0%A5%80_%E0%A4%B0%E0%A4%9A%E0%A4%A8%E0%A4%BE%E0%A4%8F%E0%A4%81

3. https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B8%E0%A4%82%E0%A4%A4%E0%A4%B8%E0%A4%BE%E0%A4%B9%E0%A4%BF%E0%A4%A4%E0%A5%8D%E0%A4%AF

4. https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%95%E0%A4%AC%E0%A5%80%E0%A4%B0

5. http://bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%95%E0%A4%AC%E0%A5%80%E0%A4%B0_%E0%A4%95%E0%A4%BE_%E0%A4%9C%E0%A5%80%E0%A4%B5%E0%A4%A8_%E0%A4%AA%E0%A4%B0%E0%A4%BF%E0%A4%9A%E0%A4%AF

6. http://bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%95%E0%A4%AC%E0%A5%80%E0%A4%B0

7. http://www.bharatdarshan.co.nz/magazine/literature/226/kabir-ke-dohe.html

8. http://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%95%E0%A4%AC%E0%A5%80%E0%A4%B0

9. https://www.youtube.com/watch?v=44M6yyIxJYk

10. https://www.youtube.com/watch?v=WEWbl-YbowU